इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को, फोटोकॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता।

मूल्य : 175 रुपए

© शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी

पहला संस्करण : 2007

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नयी दिल्ली-110 002

शाखाएँ : अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800006
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-211001

वेबसाइट : www.rajkamalprakashan.com
ई-मेल : info@rajkamalprakashan.com

आवरण : राजकमल स्टूडियो

मुद्रक : बी.के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

URDU KA ARAMBHIK YUG
Sahityik Sanskriti Evam Itihas Ke Pehlu
by Shamsurrhaman Faruqi

ISBN : 978-81-267-1344-8

भूमिका

शिकागो विश्वविद्यालय में National Endowment for Humanities नामक संस्था के सहयोग से एक बहुत बड़ी योजना कई साल पहले बनी थी। इस योजना का उद्देश्य हिन्दुस्तान की प्रमुख भाषाओं की साहित्यिक संस्कृति, साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास से उनके सम्बन्धों, उनके आपसी सम्पर्कों और साहित्य के बारे में उन भाषाओं में प्रचलित अवधारणाओं का अध्ययन करना था, क्योंकि हिन्दुस्तान ही नहीं, पश्चिम में भी कोई विस्तृत और व्यापक काम इस विषय पर नहीं हुआ है। प्राचीन और आधुनिक हिन्दुस्तान में साहित्य और भाषा और सत्ता में किस प्रकार के सम्बन्ध अस्तित्व में आए ? कोई भाषा 'साहित्यिक भाषा' किस तरह और कब बनती है ? किसी भाषा में साहित्य-रचना करनेवालों और साहित्य को बरतने वालों के बीच जो सिलसिले होते हैं, क्या उनकी विशेषता केवल शक्ति पर या केवल लेन-देन के व्यवहार पर आधारित होती है, या कोई आदर्श सभ्यता भी उस पर प्रभाव डालती है ?

इस योजना को Literary cultures in Indian History का नाम दिया गया, और प्राचीन-आधुनिक तमाम बड़ी हिन्दुस्तानी भाषाओं के विशेषज्ञ इकट्ठा किए गए, हर एक ने अपनी बिसात भर बहुत अच्छे निबन्ध लिखे और दूसरों के विषयों पर अपनी राय भी दी। हर एक निबन्ध का बहुत ही बारीक और निश्चित आलोचना के बाद मूल्यांकन किया गया। बहस और प्रश्नोत्तर की दृष्टि से हर निबन्ध एक से अधिक बार लिखा गया। प्रस्ताव यह है कि इन निबन्धों को एक या दो भाग में छापा जाए। ये निबन्ध अब अंग्रेजी में उपलब्ध हैं। शिकागो विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर शेलडन पॉलक (Sheldon Pollock) इस पूरे प्रोग्राम के निर्देशक (Director) और संस्कृत-साहित्य से सम्बन्धित निबन्धों के लेखक भी हैं।

मेरे जिम्मे Early Urdu पर लेख लिखने का काम सौंपा गया था। उर्दू/हिन्दी के सम्बन्धों को सुलझाए बिना Early Urdu का पद अर्थहीन है। अतः मैंने अपनी बात आधुनिक हिन्दी के आरम्भ और उसकी छुपी (और प्रत्यक्ष) राजनीति और उर्दू साहित्यिक संस्कृति पर उसके प्रभाव से शुरू की। इसके बाद मैं इस प्रश्न से उलझा कि उर्दू भाषा यद्यपि दिल्ली के आस-पास पैदा हुई, लेकिन

इसमें साहित्य की पैदावार आरम्भ में गुजरात और दकन में क्यों हुई ? फिर गुजरात और दकन में सैद्धान्तिक आलोचना और काव्यशास्त्र का उदय तथा इस सिलसिले में अमीर ख़ुसरो और संस्कृत के केन्द्रीय रोल पर भी प्रकाश डाला गया। इसके बाद मैंने निम्नलिखित विषयों की छानबीन की : दिल्ली का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य पर देर से प्रकट होना, लेकिन दिल्ली के साहित्यिक साम्राज्यवादी स्वभाव के कारण गैर दिल्ली के साहित्यकारों और 'बाहरवालों' का उर्दू की प्रामाणिक सूची (Canon) से बाहर रहना, और फिर अठारहवीं सदी की दिल्ली में नयी साहित्यिक संस्कृति और काव्यशास्त्र का उदय।

दिल्ली में 'इस्लाहे ज़बान' (भाषा की शुद्धता) की 'मुहिम' और 'ईहाम' (अन्योक्ति) के आन्दोलन की वास्तविकता क्या है ? उस्तादी/शागिर्दी का इदारा दिल्ली के अलावा कहीं और क्यों न वजूद में आया ? इन प्रश्नों के अलावा 'दिल्ली स्कूल' और 'लखनऊ स्कूल' पर भी इस लेख में विचार प्रकट किया गया है।

कोई तीन-चार साल की मेहनत के नतीजे में मेरा लेख बढ़कर एक पूरी किताब बन गया। इसका संक्षिप्त रूप शेलडन पॉलक की सम्पादित पुस्तक में छप चुका है। मूल अंग्रेजी पुस्तक और उसका उर्दू अनुवाद भी छप चुका है। अब यह हिन्दी अनुवाद छप रहा है।

मैं अनुवादक डॉ. रहील सिद्दीक़ी और डॉ. गोविन्द प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय और राजकमल प्रकाशन का भी ममनून हूँ कि उन्होंने ये किताब छापी।

जमीला ने हस्ब-मामूल मेरे हर काम को अपनी तवज्जो से आसान बनाया, लेकिन वहाँ का मुआमला दरदिल है।

शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी

इलाहाबाद
दिसम्बर, 2003

अनुक्रम

भूमिका 5

इतिहास, विश्वास एवं राजनीति : आरम्भ की कुछ मिथ्याएँ 11
इतिहास का नव-निर्माण, साहित्यिक संस्कृति का पुनर्गठन 35
आरम्भ, अन्तराल और अनुमान 52
सैद्धान्तिक आलोचना और काव्यशास्त्र का उदय 64
उत्तर भारत में साहित्य का वास्तविक आरम्भ 88
वली नाम का एक शख़्स 106
नयी साहित्यिक संस्कृति 120

इतिहास, विश्वास एवं राजनीति : आरम्भ की कुछ मिथ्याएँ

पुराने ज़माने में 'उर्दू' नाम की कोई भाषा नहीं थी। जो लोग 'प्राचीन उर्दू' पद का इस्तेमाल करते हैं, वे भाषा-विज्ञान और इतिहास की दृष्टि से ग़लत शब्द बरतते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी है कि 'प्राचीन उर्दू' शब्द का प्रयोग आज ख़तरे से ख़ाली नहीं। भाषा के नाम की हैसियत से शब्द 'उर्दू' अपेक्षाकृत कम उम्र है। और यह प्रश्न, कि प्राचीन उर्दू क्या थी, या क्या है, एक अर्सा पहले, ऐतिहासिक क्षेत्र से बाहर निकल चुका है। पहले तो यह प्रश्न उर्दू/हिन्दी के इतिहास के बारे में औपनिवेशिक, साम्राज्यवादी हितों के अधीन अंग्रेजों की राजनीतिक नीतियों का शिकार रहा। और फिर आधुनिक हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानी (हिन्दू) अस्मिता के बारे में राजनीतिक और भावनात्मक परिकल्पनाओं के जगत में प्रवेश कर गया।

आज के आम हिन्दी बोलनेवाले के लिए यह विचार अब विश्वास में बदल चुका है कि जिस भाषा को वह 'हिन्दी' के नाम से जानता है, वह प्राचीन समय से मौजूद है और इसके साहित्य का श्रीगणेश (अगर और पहले नहीं भी तो) कम-से-कम ख़ुसरो (1253-1325) से होता है। ऐसे बहुत-से लोगों का यह भी मानना है कि कभी अठारहवीं शताब्दी में पुराने ज़माने की यह असली 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' उस समय 'उर्दू' बन गई जब मुसलमानों ने 'फ़ैसला' किया कि वे अपने समय की प्रचलित 'हिन्दी' की राह से हटकर एक भारी-भरकम फ़ारसी युक्त भाषा अपनाएँगे। और यह भाषा हिन्दुस्तानी मुसलमानों की पहचान बन गई।[1]

हिंन्दी/उर्दू साहित्य के इतिहास के नाम से आज तक जो धारणाएँ हमारे देश में प्रचलित हैं, उनका बड़ा हिस्सा केवल नामकरण के संयोग पर आधारित है। हम लोग इस बात को अक्सर भूल जाते हैं कि जिस भाषा को आज हम 'उर्दू' कहते हैं, पुराने ज़माने में उसी भाषा को 'हिन्दवी', 'हिन्दी', 'देहलवी', 'गुजरी', 'दकनी' और फिर 'रेख़्ता' कहा गया है। और ये नाम लगभग उसी क्रम से प्रयोग में आए, जिस क्रम में मैंने इन्हें दर्ज किया है। यह ज़रूर है कि इस भाषा का जो रूप दकन (दक्षिण) में बोला और लिखा जाता था, उसे सत्रहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक 'दकनी' ही कहते थे। और उत्तर भारत में एक बड़े समय तक 'रेख़्ता' और 'हिन्दी' दोनों ही इस भाषा के नाम की हैसियत से साथ-साथ इस्तेमाल होते रहे।

अंग्रेजों ने इस भाषा के लिए अपनी ईजाद या पसन्द के नाम इस्तेमाल किए।

जहाँगीर के दरबार में जेम्स प्रथम के दूत सर टॉमस रो के साथी एडवर्ड टेरी ने अपनी पुस्तक 'ए व्हायज टु ईस्ट इंडिया' (लन्दन, 1655) में इस भाषा को 'इन्दोस्तान' (Indostan) के नाम से याद किया है। वह लिखता है कि 'इन्दोस्तान' बड़ी जानदार भाषा है, और यह कम-से-कम शब्दों में बहुत कुछ कह डालने में सक्षम है। इसकी शब्दावली में अरबी फ़ारसी का बाहुल्य है, लेकिन इसकी लेखन-शैली, अरबी फ़ारसी से भिन्न है।[2] अंग्रेजों ने और जो नाम इस भाषा के लिए इस्तेमाल किए, वे हैं : Moors, Indostans, और अन्त में Hindoostanee, Hindostanic। Indostans के अस्तित्व का पता ऑक्सफ़ोर्ड इंगलिश डिक्शनरी से लगता है। शेष से हमारी मुलाकात इस लेख के दौरान होगी। इनमें से 'हिन्दुस्तानी' को अपवाद मानकर हटा दें, तो अंग्रेजों के दिए हुए उपर्युक्त नामों में से कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे किसी उर्दू बोलनेवाले ने इस्तेमाल किया हो, या अगर इस्तेमाल न भी किया हो तो उससे परिचित रहा हो। ये सब नाम अंग्रेजों ने अपनी अज्ञानता अथवा राजनीतिक आवश्यकताओं के कारण ईजाद किए थे।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा, उत्तर में 'रेख़्ता' और 'हिन्दी' हमारी भाषा के नाम की हैसियत से समान रूप से लोकप्रिय थे। यह स्थिति अठारहवीं शताब्दी तक रही। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से भाषा के नाम की हैसियत से 'हिन्दी' को 'रेख़्ता' पर प्राथमिकता दी जाने लगी। बल्कि यह कहा जाए तो ग़लत न होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी में बोलचाल की भाषा को लगभग हमेशा 'हिन्दी' ही कहा जाता था, जबकि अठारहवीं शताब्दी में 'रेख़्ता' को बोलचाल की भाषा के लिए बेझिझक इस्तेमाल करते थे। मीर का शेर है (पहला दीवान, 1752 से पूर्व) :

गुफ़्तगू रेख़्ते में हमसे न कर
यह हमारी ज़बान है प्यारे[3]

उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग अन्त तक हिन्दी और उर्दू दोनों ही नाम प्रचलित रहे। धीरे-धीरे भाषा के नाम के रूप में 'रेख़्ता' का चलन घटता गया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भी ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं, जहाँ 'हिन्दी' को 'उर्दू' के अर्थ में इस्तेमाल किया गया है।[4] 'हिन्दवी' का भी इस्तेमाल अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक रहा। चुनाँचे मुसहफ़ी के पहले दीवान (संकलन काल लगभग 1785) में यह शेर है :

मुसहफ़ी फ़ारसी को ताक़ पे रख
अब है अशआर-ए-हिन्दवी का रिवाज[5]

भाषा के नाम की हैसियत से 'उर्दू' शब्द का प्रयोग पहली बार 1780 के आसपास हुआ। संयोगवश प्रथम प्रयोग के सभी, या लगभग सभी प्राचीन उदाहरण मुसहफ़ी ही के यहाँ सुलभ हैं। पहले दीवान में ही है :

अलबत्ता मुसहफ़ी को है रेख़्ते में दावा
यानी के हैं ज़बाँ दाँ उर्दू की वो ज़बाँ का[6]

सम्भवतः यहाँ 'उर्दू' शब्द 'शाहजहाँबाद का शहर' के लिए प्रयोग में लाया गया है, न कि 'उर्दू ज़बान' के लिए। वाक्यांश 'उर्दू की ज़बाँ' को उस भाषा के अर्थ में लेना,

जिसका नाम 'उर्दू' है, उसी समय सही होगा, जब यह निश्चित हो कि 'उर्दू' शब्द 'शाहजहाँबाद' के अर्थ में इस्तेमाल नहीं किया गया है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, उत्तर भारत के लोग लम्बे समय तक 'उर्दू' को 'शाहजहाँबाद' के अर्थ में बोलते थे और 'ज़बाने उर्दू' कभी-कभी फ़ारसी के अर्थ में भी इस्तेमाल की गई है। ख़ैर, मुसहफ़ी के चौथे दीवान (1796 के आसपास संकलित) में जो इस्तेमाल है वह साफ़ तौर पर 'उर्दू' ज़बान के अर्थ में है। लखनऊवालों की शिकायत में वे एक मुख़म्मस (वह नज़्म जिसमें हर बन्द में पाँच-पाँच मिस्रे हों) में कहते हैं :

हर जाए गोश चश्मबिना नाक कान को
अपनी ज़बान समझे हैं उर्दू ज़बान को[7]

अल्लामा हाफ़िज़ महमूद शीरानी ने अपने एक लेख 'उर्दू ज़बान और उसके मुख़्तलिफ़ नाम' (प्रथम संस्करण, मई 1929) में मुसहफ़ी का निम्नलिखित शेर उद्धृत किया है :

ख़ुदा रक्खे ज़बाँ हमने सुनी है मीर ओ मिर्ज़ा की
कहें किस मुँह से हम ऐ मुसहफ़ी उर्दू हमारी है[8]

ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ 'मिर्ज़ा' से मुराद मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी सौदा हैं। सौदा का निधन जून 1781 में हुआ। इसलिए अनुमान लगाया जा सकता है कि यह शेर जून 1781 से पहले का होगा। लेकिन कितना पहले का, यह बात साफ़ नहीं होती। नय्यर काकोरवी ने 'नूरुल्लुग़ात' के पहले भाग (प्रथम संस्करण, 1924) में लफ़्ज़ उर्दू बतौर ज़बान के नाम के प्रमाण में यही शेर उद्धृत किया है।[9] हवाला दोनों ही महाशयों ने नहीं दिया। मुसहफ़ी के वृहद् प्रकाशित कलाम में मुझे यह शेर नहीं मिला। न ही यह मुसहफ़ी के नूरुलहसन नक़वी द्वारा सम्पादित 'दीवाने क़सायद' की प्रेस कापी में मिला। (यह दीवान अब भी अप्रकाशित है।) सम्भवतः स्वर्गीय शीरानी ने यह शेर 'नूरुल्लुग़ात' में देखा हो। लेकिन वे बड़े सतर्क शोधकर्ता थे। उन्होंने किसी और स्रोत से इस बात की पुष्टि कर ली होगी कि यह शेर मुसहफ़ी का ही है। हो सकता है कि पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर में जो मख़्तूते (पांडुलिपि) मुसहफ़ी के हैं और जो निश्चय ही शीरानी साहब को उपलब्ध थे, उनमें यह शेर उन्हें मिला हो।

हो सकता है पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर में कुछ ऐसा कलाम अब भी हो जो नूरुलहसन नक़वी और हफ़ीज़ अब्बासी दोनों से छूट गया हो। लेकिन इस समय किसी प्रमाणित सन्दर्भ के बिना उपर्युक्त शेर को मुसहफ़ी की सम्पत्ति मानने में थोड़ा-सा संकोच अवश्य है।

बहरहाल, अगर इस शेर में सौदा के उल्लेख का मतलब यह निकाला जाए कि सौदा उस समय जीवित थे, तो यह शेर 1770 के आसपास से लेकर जून 1781 के बीच कहा गया होगा। '1770 के आसपास' मैंने इसलिए कहा कि मुसहफ़ी का जन्म 1750 में हुआ था और सम्भवतः उन्होंने सत्रह-अठारह वर्ष की उम्र में शेर कहना आरम्भ किया होगा। लेकिन यह भी है कि मुसहफ़ी लखनऊ पहली बार 1772 के आसपास गए थे। सौदा

उस समय वहाँ मौजूद थे, लेकिन मीर अभी दिल्ली में ही थे। मुसहफ़ी की पहली दिल्ली यात्रा 1773 की है, और शायद उसी समय वे मीर से पहली बार मिले हों। इसलिए यह शेर 1771 और 1773 के बीच का हो सकता है।[10]

एक बात मगर यह भी ध्यान में रखने की है कि मुसहफ़ी के जिस शेर पर हम बात कर रहे हैं, उसमें 'ख़ुदा रक्खे' का वाक्यांश 'मीर ओ मिर्ज़ा' के लिए नहीं, बल्कि 'ज़बान उर्दू' के लिए हो सकता है। फिर इस स्थिति में इस शेर के लिखे जाने का काल कुछ भी हो सकता है।

तीसरे दीवान (संकलन काल लगभग 1794) और छठे दीवान (संकलन काल लगभग 1809) में मुसहफ़ी के शेर हैं :

ये रेख़्ते का जो उर्दू है मुसहफ़ी इसमें
नयी निकाली हैं बातें हज़ार हमने तो

और

वाक़िफ़ नहीं ज़बान से उर्दू की तिस पे आह
क्या-क्या अज़ीज़ करते हैं अशआर का घमंड[11]

पहला शेर पहले दीवान का है। इसमें 'उर्दू' शब्द पुल्लिंग में प्रयुक्त है। फिर 'रेख़्ते का उर्दू' में दोनों शब्द भाषा के नाम का अर्थ नहीं दे सकते। इसलिए सम्भवतः 'उर्दू' से यहाँ मतलब 'शहर', 'क़िला' है न कि वह भाषा, जिसे आज हम 'उर्दू' कहते हैं। दूसरे शेर में बिलकुल स्पष्ट है कि 'उर्दू' से शहर दिल्ली मुराद है। अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भी मुसहफ़ी ने 'उर्दू' शब्द को 'दिल्ली शहर' के अर्थ में इस्तेमाल किया है।

ऊपर जो कुछ कहा गया उसकी रोशनी में माना जा सकता है कि हमारी ज़बान के नाम के तौर पर 'उर्दू' शब्द का इस्तेमाल अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम पच्चीस वर्षों के पूर्व नहीं मिलता। एक भाषा के नाम के तौर पर इस शब्द (उर्दू) का जीवन सम्भवतः 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला शाहजहाँबाद' के रूप में आरम्भ हुआ और इसका आशय था "शाहजहाँबाद के शहर-ए-मुअल्ला/किला-ए-मुअल्ला/दरबार-ए-मुअल्ला की भाषा।" ऐसा लगता है कि आरम्भ में इस वाक्यांश से हमारी उर्दू ज़बान नहीं, बल्कि फ़ारसी मुराद ली जाती थी। समय के साथ यह वाक्यांश संक्षिप्त होकर 'ज़बान उर्दू-ए-मुअल्ला', फिर 'ज़बान उर्दू' और फिर 'उर्दू' रह गया। 'हॉब्सन जॉब्सन' के लेखकों ने 1560 का एक हवाला 'उर्दू बाज़ार' के प्रमाण में उद्धृत किया है। वे यह भी कहते हैं कि हिन्दुस्तान में 'उर्दू' शब्द का आगमन बाबर के साथ हुआ और यह कि बाबर की लश्करगाह (सैनिक छावनी) का नाम 'उर्दू-ए-मुअल्ला' था और वह भाषा, जो इस लश्करगाह के आसपास के क्षेत्र में पैदा हुई, 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' कहलाई।[12]

यूल और बर्नील साहेबान (लेखक : हॉब्सन जॉब्सन) की सनद तो निश्चय ही दुरुस्त है, लेकिन इस पर जो टिप्पणी की गई है, वह सरासर ग़लत बातों पर आधारित है। पहली बात तो यह कि बाबर के पहले भी हिन्दुस्तान में तुर्कों की कमी नहीं थी।

इसलिए उर्दू शब्द के आगमन को बाबर के आगमन के साथ जोड़ना अनावश्यक है। दूसरी बात यह कि बाबर कभी दिल्ली में लम्बे समय तक नहीं ठहरा। तीसरी बात यह कि हिन्दी/हिन्दवी/देहलवी नाम की भाषा दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्रों में बाबर के बहुत पहले से मौजूद थी। उत्तर भारत में मुग़लों के आगमन के परिणामस्वरूप यहाँ क़तई कोई नयी भाषा नहीं पैदा हुई।

अठारहवीं शताब्दी के आते-आते, बल्कि शायद उससे कुछ पहले ही 'उर्दू' शब्द को 'शहर देहली/शाहजहाँबाद' ख़ासकर 'फ़सील बन्द शहर' के अर्थ में आमतौर पर इस्तेमाल किया जाने लगा और यह अर्थ कम-से-कम उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक प्रचलित रहा। इंशा और क़तील ने 'दरया-ए-लताफ़त' (1807) में लिखा कि "मुर्शिदाबाद और अज़ीमाबाद के लोग अपने हिसाबों उर्दू के अहल-ए-ज़बान है, और अपने शहर को 'उर्दू' क़रार देते हैं।"[13]

उनका मतलब यह है कि अज़ीमाबादी और मुर्शिदाबादी स्वयं को कुछ भी समझें, लेकिन वे 'उर्दू' अर्थात् शाहजहाँबाद के असली वासी नहीं हैं। इसी तरह मीर अम्मन ने जहाँ कहीं 'उर्दू की ज़बान' लिखा है तो उससे उनका अभिप्राय 'शाहजहाँबाद की भाषा' है। मुसहफ़ी का उदाहरण हम ऊपर देख चुके हैं। आगे चलकर उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक लिखे हुए उर्दू शब्दकोशों के लेखकों की दृष्टि में 'उर्दू' का सर्वाधिक लोकप्रिय अर्थ 'शहर' शाहजहाँबाद ही है।

यद्यपि मुग़लशाही वंश के बहुत-से व्यक्ति और स्वयं बाबर थोड़ी-बहुत हिन्दी जानते थे और बाद के मुग़ल सम्राट व राजकुमार कम-से-कम एक हिन्दुस्तानी भाषा से भली-भाँति परिचित थे, 'हिन्दी' (अर्थात् आज की उर्दू) को मुग़ल दरबार की (ग़ैर-सरकारी, सरकारी भाषा तो वह कभी बन ही न सकी) भाषा बनते बहुत देर लगी। ग़ैर-सरकारी भाषा का रुतबा भी उसके लिए उसी समय सम्भव हो सका, जब शाहआलम द्वितीय (शासनकाल 1759-1806) जनवरी 1772 में दिल्ली वापस आया। दरबार की सरकारी भाषा तो फिर भी फ़ारसी ही रही। लेकिन शाहआलम बहुत दिन इलाहाबाद में रहा था, और उसे 'हिन्दी' से कुछ लगाव भी था। इसलिए अनौपचारिक रूप से वह न केवल 'हिन्दी' में बातचीत करता था, बल्कि इस भाषा का काफ़ी अच्छा लेखक भी था। अपनी कृति 'अजायब-उल-क़सस' में उसने इस दास्तान की भाषा का नाम हिन्दी ही लिखा है। शाहआलम ने यह किताब 1792/1793 में लिखना आरम्भ किया, लेकिन उसे अधूरा ही छोड़ दिया। शायद नेत्रविकार के कारण लिखना उसके लिए आसान न था। फिर भी जो कुछ उसने छोड़ा है, वह छह सौ पृष्ठों से कम नहीं है।[14]

ख़ान आरज़ू (1687/1688–1756) ने 1747 से 1752 के ज़माने में 'नवादिर-उल-अलफ़ाज़' लिखी। ये असल में अब्दुल वासे हाँस्वी के उर्दू शब्दकोश 'ग़रायबुल-लुग़ात' (लगभग 1690 ई. संकलन) पर विस्तारपूर्वक की गई आलोचना है, जो स्वयं एक शब्दकोश बन गया है। 'नवादिर' में ख़ान आरज़ू ने जगह-जगह उर्दू या 'उर्दू-ए-मुअल्ला' लिखकर उसका आशय दिल्ली लिया है। उदाहरण के तौर पर एक शब्द

'छिनेल' पर टिप्पणी करते हुए ख़ान आरज़ू लिखते हैं—"हम लोग जो इलाक़ा-ए-हिन्द के हैं और उर्दू-ए-मुअल्ला में रहते हैं, इस लफ़्ज़ से वाक़िफ़ नहीं हैं।"[15]

अपनी महत्त्वपूर्ण कृति 'मुसम्मिर' (संकलन काल लगभग 1752) में ख़ान आरज़ू ने फ़ारसी भाषा के प्राचीन नामों 'पहलवी' और 'दरी' से बहस करते हुए लिखा है कि शब्द 'दर' से 'दर मुलूको-सलातीन' और शब्द 'पहलू' से 'उर्दू' (अर्थात् शहरे-बादशाह) अभिप्राय है—इसके बाद वे लिखते हैं :

"अतः यह बात बिलकुल सिद्ध है कि उर्दू की भाषा सुभाषित भाषा है। उसी जगह की फ़ारसी प्रामाणिक है। और इससे अभिप्राय ख़ास शेरो-इंशा (गद्य-पद्य) की भाषा नहीं। यही कारण है कि हर देश के विभिन्न शहरों के कवि, उदाहरणार्थ शरवान के ख़ाक़ानी, गन्जा के निज़ामी, ग़ज़नी के सनाई और दिल्ली के ख़ुसरो, इसी प्रामाणिक भाषा में बातें करते थे। यह भाषा और कोई नहीं, उर्दू की भाषा है।"[16]

इस तरह यह बात स्पष्ट है कि 1750 के आसपास (कम-से-कम) अभिजात वर्ग में 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' से वह ज़बान हरगिज़ मुराद नहीं थी, जिसे हम आज उर्दू के नाम से जानते हैं। मीर ने अलबत्ता रेख़्ता की शाइरी को उर्दू-ए-मुअल्ला शाहजहाँबाद की भाषा में शाइरी क़रार दिया था, लेकिन उसके कारण दूसरे थे।[17]

रहा सवाल उर्दू और उर्दू-ए-मुअल्ला का, तो ये शब्द भाषा के नाम के तौर पर उस समय तक इस्तेमाल में भी न थे। हमारी भाषा (अर्थात् वह भाषा जिसे हम आज उर्दू कहते हैं) का नाम शाहआलम के लिए 'हिन्दी' था और इसे शाहआलम ने क़िले में लाकर अभिजात वर्ग के लिए सम्मानजनक बनाया। वह (संस्कृत समेत) कई भाषाएँ जानता था। उसे 'हिन्दी' से विशेष लगाव था। वह इसके समर्थकों में था और स्वयं इस भाषा में कविता करता था। इन कारणों से, और इसलिए कि वह इसे दरबार में अनौपचारिक रूप से इस्तेमाल करता होगा, 'हिन्दी' को पूरे उत्तर भारत में सम्मान प्राप्त हुआ। इसमें बहुत कम सन्देह है कि यह 1770 का दशक रहा होगा जब वाक्यांश 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' का अर्थ फ़ारसी की बजाय 'हिन्दी' लगाया जाने लगा। मेरा विचार है कि ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' को आमतौर पर फ़ारसी की जगह 'हिन्दी' कहलाते-कहलाते 1790-1795 का ज़माना अवश्य आ गया होगा।

गिलक्राइस्ट ने 1796 में 'Hindoostanee Language' की एक 'Grammar' प्रकाशित की। इस पुस्तक का नौवाँ अध्याय इसने छन्दशास्त्र के लिए रखा और लिखा कि मैं उदाहरणस्वरूप "बेहतरीन शोअरा के मुख़्तलिफ़ क़िस्म के अशआर से नमूने पेश करूँगा। ये वो शोअरा हैं जिन्होंने अपनी कई तसनीफ़ात (कृतियाँ) उस मिलवाँ बोली में लिखी हैं जिसे 'उर्दू' भी कहा जाता है, यानी दरबार की शुस्ता (परिष्कृत) ज़बान। और जो आज भी कमोबेश अपनी असली शक्ल में, एक ज़माने में इंतिहाई ताक़तवर इस सल्तनत के दूरदराज़ इलाक़ों में छाई हुई है।"[18]

ख़ान आरज़ू ने संस्कृत के लिए 'हिन्दी किताबी' शब्द इस्तेमाल किया है। अपनी लम्बी मसनवी 'नोहसिपहर' (1317-1318) मे अमीर ख़ुसरो ने इसे 'संस्कृत' ही कहा

है और लिखा है : "यह एक ख़ास तरह की भाषा है, इसका ज्ञान ब्रहमनों के लिए ज़रूरी है। अज़मना-ए-क़दीम (प्राचीन काल) से इसका नाम संस्कृत है। आम लोग इसके कुन मकुन के बारे में कुछ नहीं जानते, सिर्फ़ ब्रहमन ही जानते हैं और सब ब्रहमन भी इसे इतनी खूबी से नहीं जानते कि इसमें गुफ़्तगू कर सकें या इसमें शेर मौज़ूँ कर सकें।"[19]

चूँकि प्राचीन काल के उत्तर भारत में नागरी लिपि ब्राह्मणों के अतिरिक्त शायद किसी की पहुँच में नहीं थी, इसलिए कायस्थ जब पन्द्रहवीं शताब्दी में ब्राह्मणों से अलग हुए तो उन्होंने अपने लिए 'कैथी' लिपि ईजाद की। यह नागरी पर आधारित थी और उत्तर भारत में उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रचलित रही।[20] चूँकि उत्तर भारत में कोई ऐसी लिपि मौजूद नहीं थी, जो विशिष्ट और साधारण सभी लोगों में लोकप्रिय हो और हर जगह इस्तेमाल भी होती हो, इसलिए सम्भव है कि आरम्भ में उत्तर भारत की नयी उभरती हुई भाषाओं का साहित्य मौखिक ही रहा हो। हिन्दी/हिन्दवी/देहलवी का सौभाग्य था कि उसे शुरू से ही फ़ारसी लिपि उपलब्ध थी। यह इसलिए हुआ कि इस भाषा का साहित्यिक प्रयोग सबसे पहले मुसलमानों ने किया। ये लोग स्वयं सूफ़ी थे या अमीर ख़ुसरो की तरह सूफ़ियों से जुड़े हुए थे।

औपनिवेशिक स्तर पर अठारहवीं शताब्दी के अन्त में अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियों के बीच जो मामले रहे, उनमें अंग्रेजों ने देखा कि 'हिन्दी' ही हिन्दुस्तान की सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा है। लेकिन उन्होंने 'हिन्दी'/'हिन्दवी' की जगह इस भाषा को 'हिन्दुस्तानी' नाम देना चाहा। इसके कई कारण थे। एक तो यह कि हिन्दुस्तान की सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा का नाम 'हिन्दुस्तानी' ही इन्हें अधिक तर्कसंगत एवं व्याकरण के एतबार से सही मालूम होता होगा, जैसे इंगलिस्तान की मुख्य भाषा का नाम अंग्रेजी था; फ्रांस की मुख्य भाषा का फ्रांसीसी, जर्मनी की मुख्य भाषा का नाम जर्मन आदि। दूसरी बात यह थी कि भाषा के नाम के तौर पर 'हिन्दुस्तानी' पूर्णतया अपरिचित भी न था। (अल्लामा सैयद सुलेमान नदवी ने इस नाम को सोलहवीं और सत्रहवीं की फ़ारसी कृतियों में पाया है।)[21] हाँ, यह ज़रूर है कि भाषा के नाम की हैसियत से 'हिन्दुस्तानी' को कभी वह लोकप्रियता नहीं प्राप्त हुई, जो 'हिन्दी' और 'रेख़्ता' को प्राप्त थी। भाषा के नाम की हैसियत से 'हिन्दुस्तानी' शब्द फ़ारसी के बड़े शब्दकोशों में नहीं मिलता।

लेकिन अंग्रेजों के लेखन और नीति में 'हिन्दुस्तानी' को 'हिन्दी/हिन्दवी' पर भाषा की हैसियत से प्राथमिकता देने का सबसे बड़ा कारण यह था कि उन्होंने इस भाषा को सिर्फ़ मुसलमानों से सम्बद्ध क़रार दिया था। वे 'हिन्दी' भाषा को 'हिन्दुओं की भाषा' और एक अलग तरह की भाषा क़रार देने का आग्रह कर रहे थे। वे यह भी स्वीकार करते थे कि यह ज़बान, जिसे रेख़्ता या हिन्दी कहा जाता है, सारे हिन्दुस्तान में बोली जाती है, और अगर हर जगह बोली नहीं तो समझी अवश्य जाती है। लेकिन उनका आग्रह था कि यह भाषा है मुसलमानों की। 'हॉब्सन जॉब्सन' के लेखकों का दिया हुआ

विवरण मैं उन्हीं के शब्दों में उद्धृत कर रहा हूँ ताकि अनुवाद के कारण किसी बात के तोड़-मरोड़कर पेश किए जाने की सम्भावना न रहे :

> **Hindustani,** properly an adjective, but used substantively in two senses, *viz,* (a) a native of Hindustan, and (b) *(Hindustani zaban)* 'the language of the country' but in fact the language that the Mahommedans of Upper India, and eventually the Mahommedans of the Deccan, developed out the Hindi dialcet of the Doab chiefly, and the territory around Agra and Delhi, with a mixture of Persian vocables and phrases, and a readiness to adopt foreign words. Also called *Oordoo,* i.e., the language of the Urdu, (Horde), or Camp. This language was for a long time a kind of Mahommedan *lingua franca* all over India, and still possesses that character over a large part of the country, and among certain classes, Even in Madras, where it least prevails, it is still recognised in native regiments as the language of intercourse between officers and men. Old fashioned Anglo-Indians used to call it the Moors (q.v.)[22]

उपर्युक्त उद्धरण में जो ग़लत बातें तुरन्त ध्यान आकर्षित करती हैं, वे मैं नीचे दर्ज करता हूँ :

1. हिन्दुस्तानी (अर्थात् हिन्दी/हिन्दवी) भाषा 'अपर इंडिया' में नहीं, बल्कि दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र में पैदा हुई।
2. इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि इसको केवल मुसलमान बोलते थे। (प्रत्यक्ष बात यह है कि अगर हम ये मान भी लें कि इस ज़बान को मुसलमानों ने ही ईजाद किया, तो ज़ाहिर है कि इसलिए ईजाद किया कि इसके माध्यम से वे 'स्थानीय' लोगों से बातचीत कर सकें। इसलिए इस भाषा को 'स्थानीय' लोग भी बोलते होंगे ?)
3. यह भाषा साहित्यिक हैसियत से सबसे पहले गुजरात में स्थापित हुई, दकन (दक्षिण) में नहीं।
4. जिस 'हिन्दी' बोली (dialect) के बारे में कहा जा रहा है कि उर्दू उससे निकली, उस dialect का कोई अस्तित्व नहीं है। 'हिन्दी' वही भाषा है जिसे हमारे माननीय लेखक 'हिन्दुस्तानी' का नाम दे रहे हैं।
5. 'उर्दू' शब्द का अर्थ हमारे यहाँ Horde (भीड़, झुंड) कभी नहीं रहा और न इस भाषा का नाम 'उर्दू' इसलिए पड़ा कि यह किसी कैंप या लश्करगाह की भाषा थी।

6. अगर यह भाषा केवल मुसलमानी Lingua Franca (हर जगह बोली और समझी जानेवाली भाषा) थी, तो यह कैसे हुआ कि मद्रास के सैनिकों में 'अफ़सरों और जवानों के बीच बोलचाल' की भाषा यही थी ? स्पष्ट है कि सब अफ़सर और जवान इस्लाम धर्म के अनुयायी तो न रहे होंगे।

यह तो हाल था 'हॉब्सन जॉब्सन' का, जिसे सिर्फ़ अंग्रेज और कुछ हिन्दुस्तानी पढ़ते होंगे। 'ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी' के बारे में सभी का मानना है कि इससे बढ़कर कोई शब्दकोश न बना है और न शायद बन सकता है। ज्ञान, शोध और काल के लिहाज से ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी को 'हॉब्सन जॉब्सन' पर सौ से कुछ अधिक वर्षों की वरीयता प्राप्त है। आप भी देखें कि इस शब्दकोश में 'हिन्दुस्तानी' के बारे में क्या गुल खिलाए गए हैं। यहाँ भी मैं असल अंग्रेजी उद्धरण दर्ज करता हूँ, ताकि किसी सन्देह की गुंजाइश न रहे :

> **Hindustani, Hindostanee,** (hindu:'stani), *a,* and *s.* Also Hindustanee, —sthanee, stani,—stanee...The language of the Muslim conqurers of Hindustan, being a form of Hindi, with a large admixture of Arabic, Persian, and other foreign elements; also called Urdu, i.e. *zaban-urdu,* language of the camp, *sc.* of the Mughal conquerers. It later became a kind of *lingua franca* over all India, varying its vocabulary according to the locality and the local language. Also called Indostan, Indostans (cf Scots.) By earlier authors sometimes applied to Hindi itself.[23]

इस उद्धरण में जो बातें 'हॉब्सन जॉब्सन' के अलावा ग़लत हैं, वे इस प्रकार हैं :

1. हिन्दुस्तान के मुसलमान 'विजेता' हमलावर कई थे। यह बात स्पष्ट नहीं की गई है कि 'Muslim Conquerers of Hindustan' से अभिप्राय क्या है। न यह स्पष्ट किया गया कि 'हिन्दुस्तान' से क्या मतलब है।
2. आगे चलकर कहा गया कि विशेषकर यह भाषा 'मुग़ल विजेताओं' की लश्करगाह की भाषा थी। यह बात सरासर ग़लत भी है और ऊपर के विवरण से विसंगत भी।
3. जैसा कि हम देख चुके हैं, यह बात भी ग़लत है कि 'उर्दू' नाम इसलिए पड़ा कि यह किसी लश्करगाह की भाषा थी।
4. 'पुराने लेखकों' ने इस भाषा को हिन्दी से एकाकार क़रार नहीं दिया, बल्कि इसी भाषा का नाम 'हिन्दी' था। यहाँ 'हिन्दी' से अभिप्राय आधुनिक हिन्दी नहीं, बल्कि वही भाषा है जिसका नाम बाद में 'उर्दू' हुआ और जिसे अंग्रेजों ने 'हिन्दुस्तानी' कहकर पुकारना चाहा।

इस तरह हम देखते हैं कि चाहे वे 'हॉब्सन जॉब्सन' के संकलनकर्ता हों या

ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के विद्वान, दोनों ने 'हिन्दुस्तानी' शब्द की परिभाषा ब्रिटिश प्रत्यक्षीकरणों या राजनीतिक नीतियों के अनुसार लिखी है : अंग्रेजों की नज़र में 'हिन्दुस्तानी' और हिन्दी दो अलग-अलग भाषाएँ हैं। हिन्दुओं के लिए 'हिन्दी' और मुसलमानों के लिए 'हिन्दुस्तानी'।

भाषा के नाम के रूप में 'हिन्दुस्तानी' कभी लोकप्रिय नहीं हुआ। स्थानीय बोलनेवालों के लिए इस भाषा का नाम हिन्दी या रेख़्ता था। वे उसी पर क़ायम रहे। लेकिन देखिए डॉक्टर जॉन गिलक्राइस्ट साहब किस शान से कहते हैं :

"मैंने अपनी अंग्रेजी हिन्दुस्तानी डिक्शनरी में इस भाषा का विवरण विस्तारपूर्वक एकत्र कर दिया है, अर्थात् जिस सीमा तक कोई यूरोपीय कृतिकार उनसे कोई सरोकार रख सकता है। तदैव अब मैं इससे आगे बताता हूँ कि हिन्दुस्तान (Hindoostan) एक संयुक्त शब्द है और इसका अर्थ है 'हिन्दुओं का देश' या 'नीग्रो लोगों का देश' और इस देश के बारे में पर्याप्त जानकारी लोगों के पास है, अतः यहाँ इसका कुछ अधिक वर्णन करना अनावश्यक है। इस देश के मुख्य वासी हिन्दू और मुसलमान हैं। इनको और इनकी भाषा को भी हम बेखटके एक साधारण, व्यापक शब्द में 'हिन्दुस्तानी' कह सकते हैं। और इस शब्द को मैंने उपर्युक्त और निम्नलिखित कारणों से अपनाया है।

"इस देश का नाम और इसकी स्थानीय भाषा दोनों ही नए हैं। इसलिए जब मैंने पहले-पहल इस भाषा का अध्ययन और अभ्यास करना शुरू किया तो मुझे इसके लिए हिन्दुस्तानी से अधिक उपयुक्त नाम कोई नहीं मालूम हुआ। निस्सन्देह यहाँ के रहनेवाले और दूसरे लोग भी इसे 'हिन्दी' अर्थात् Indian कहते हैं मानो इस नाम को 'हिन्द' से निकला हुआ बताते हैं जो कि India का प्राचीन नाम है। लेकिन इस नाम में मुश्किल यह है कि इससे 'हिन्दुवी' (Hinduwee) या 'हिन्दूई' (Hindoóee), हिन्दवी (Hindvee) का आभास होता है। और ये शब्द हिन्दू से निकले हैं अतः मैं अपने पुराने विचार पर क़ायम हूँ कि इस देश के जनसाधारण की भाषा के लिए हमें और सब नाम स्थायी रूप से त्याग देना चाहिए। और वो बेमानी/नाम Moors भी त्याग देना चाहिए। इन सबकी जगह हमें केवल 'हिन्दुस्तानी' कहना चाहिए।

"यहाँ के लोग इसे 'हिन्दुस्तानी' का नाम दें या न दें (इसका महत्त्व नहीं), क्योंकि इन लोगों में विभेद करने की क्षमता उपयुक्त दर्जे की नहीं है और अगर उपयुक्तताओं और पाबन्दियों की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया भी जाए तो वे इनको क्रियान्वित नहीं कर सकते। 'हिन्दुवी' (Hinduwee) को मैं पूर्ण रूप से हिन्दुओं की सम्पत्ति क़रार देता हूँ और इसीलिए इस पारिभाषित शब्द को मैंने हमेशा हिन्दुस्तान की प्राचीन भाषा के लिए प्रयोग किया है। यह वह भाषा है जो हिन्दुस्तान में मुस्लिम आक्रमण के पहले प्रचलित थी। वास्तविकता तो यह है कि उस समय (फ़ारसी, अरबी, हिन्दुवी के मध्य) यह भाषा ही 'हिन्दुस्तानी' की बुनियाद या आधार का काम करती है। 'हिन्दुस्तानी' एक अपेक्षाकृत नवीन भाषा है, जो फ़ारसी और अरबी पर आधारित है।

"अरबी, फ़ारसी का वही सम्बन्ध 'हिन्दुस्तानी' से क़रार देना चाहिए जो लातीनी

और फ्रांसीसी का अंग्रेजी से है। अगर हम यह कहें तो ग़लत न होगा कि 'हिन्दवी' का आधुनिक 'हिन्दुस्तानी' से वही ताल्लुक़ है जो सैक्सन Saxon का आधुनिक अंग्रेजी से है। इसको निम्नांकित सारणी के द्वारा व्यक्त कर सकते हैं—

सैक्सन—लातीनी—फ्रांसीसी—अंग्रेजी
हिन्दवी—अरबी—फ़ारसी—हिन्दुस्तानी" [24]

आपने देखा कि हमारे गिलक्राइस्ट बहादुर ने किस तरह हँसते-खेलते और किस अन्दाजे-बेपरवाही से यह घोषणा कर दी कि वे स्थानीय लोगों (Natives) की ओर से फ़ैसला कर सकते हैं, क्योंकि बेचारे Native में इतनी समझ कहाँ है कि वे विवेक को बरत सकें और अपना अच्छा-बुरा स्वयं जान सकें। हिन्दुस्तानी लोग अपनी भाषा को हिन्दी कहते हैं तो कहें, लेकिन अंग्रेज की बुद्धि कहती है कि हिन्दी से 'हिन्दू' का आभास मिलता है, इसलिए यह नाम ठीक नहीं। स्वयं गिलक्राइस्ट साहब के ज्ञान का हाल यह है कि वे 'हिन्दवी' को न केवल विशेष रूप से हिन्दुओं की सम्पत्ति क़रार देते हैं, बल्कि वे इसे ऐसी भाषा कहते हैं, जो हिन्दुस्तान में मुसलमानों के 'आक्रमण' के पहले प्रचलित थी। (कौन से 'आक्रमण' के पहले, इसका स्पष्टीकरण वे नहीं करते) इस पर तुर्रा यह कि वे फ़ारसी भाषा और इसके बोलनेवालों पर (जिनमें उस काल में बहुत-से हिन्दुस्तानी भी थे) यह झूठा आरोप भी लगाते हैं कि फ़ारसी में हिन्दू का अर्थ नीग्रो होता है।[25] गिलक्राइस्ट को यह बात तो स्वीकार है कि पुरानी 'हिन्दुवी' और आज की हिन्दी (या गिलक्राइस्ट के शब्दों में 'हिन्दुस्तानी') में वही सम्बन्ध है, जो सैक्सन और अंग्रेजी में है, लेकिन उनको यह मालूम नहीं कि 'हिन्दुवी' कोई अलग भाषा नहीं, बल्कि 'हिन्दी/हिन्दुस्तानी' का ही एक नाम थी। और न ही इस भाषा का सीधा सम्बन्ध मुसलमान आक्रमणकारियों से है।

लेकिन अंग्रेजों को तो इस देश में अपनी राजनीति चलानी थी। उन्हें वास्तविकताओं से लगाव था, लेकिन उसी हद तक जिस हद तक उनके राजनीतिक उद्देश्यों और तथ्यों में कोई विसंगति न हो। 'हिन्दी' को हिन्दुस्तानी का नाम देने और हिन्दी/हिन्दवी को हिन्दुओं की झोली में डाल देने के प्रयास गिलक्राइस्ट के पहले से हो रहे थे। अन्तर बस यह है कि गिलक्राइस्ट की बातों को अधिक लोकप्रियता फोर्ट विलियम कॉलेज के कारण मिली।

गिलक्राइस्ट से पहले हिन्दुस्तानी भाषाओं के एक 'माहिर' नथैनियल हॉलहेड (Nathaniel Halhed) ने 1778 में बंगला की एक ग्रामर अंग्रेजी में लिखी। बर्नार्ड कोन (Bernard Cohn) कहता है :

"बंगाल में अपने समय की भाषायी परिस्थिति के कारणों का वर्णन करने के लिए हालहेड ने अपनी ग्रामर की भूमिका में एक ऐतिहासिक तर्क और सिद्धान्त निर्मित किया : उसने बंगाल में संस्कृत और बंगला के अतिरिक्त दो अन्य महत्त्वपूर्ण भाषाओं की निशानदेही की। एक तो 'फ़ारसी' और दूसरी 'हिन्दुस्तानिक' (Hindustanic)। हिन्दुस्तानिक की उसने दो क़िस्म बताई। एक तो वह, जो सारे 'हिन्दुस्तान' में बोली

जाती थी, और जो उसके कथनानुसार "निस्सन्देह संस्कृत से निकली थी" इस भाषा का संस्कृत से वही सम्बन्ध था जो फ्रांस और इटली की आधुनिक बोलियों का विशुद्ध लातीनी से था। हॉलहेड का कथन है कि 'हिन्दुस्तानिक' की दूसरी क़िस्म का आरम्भ और विकास मुसलमानों का कृतज्ञ है। वे लोग हिन्दुओं की भाषा सीखने में अक्षम थे, क्योंकि अपनी भाषा के विशुद्ध रूप को क़ायम रखने के लिए उन्होंने (हिन्दुओं ने) अपनी भाषा में संस्कृत के शब्दों को अधिक-से-अधिक संख्या में दाख़िल कर लिया था। उधर मुसलमान 'आक्रमणकारियों' ने विभिन्न प्रकार के विचित्र और अपरिचित शब्द अपनी भाषाओं से लेकर (स्थानीय भाषा में) दाख़िल करना शुरू किया। इन शब्दों को मुसलमानों ने "मूल हिन्दुस्तानिक के व्याकरण सिद्धान्तों पर ऊपर से डाल दिया।" हॉलहेड का कथन है कि हिन्दुस्तानिक का यह रूप एक मिलवाँ मुहावरा था, जिसे वे हिन्दू बोलते थे जो मुसलमानों के दरबारों से सम्बन्धित थे, दूसरी ओर 'ब्रहमन और दूसरे शिक्षित हिन्दू' भी थे जिनकी प्रतिष्ठा-प्राप्ति की इच्छा उनके सिद्धान्तों पर हावी हो गई। ये लोग 'हिन्दुस्तानिक' विशुद्ध रूप से लिखते और बोलते थे। उनकी लिपि अरबी के बजाय नागरी अक्षरों पर आधारित थी।[26]

इस व्यर्थ उद्धरण पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं सिवाय इसके कि यहाँ हम गिलक्राइस्ट के सर्वश्रेष्ठ विचार का ही नहीं बल्कि फेलुन (1866) से लेकर प्लेट्स (1884), 'हॉब्सन जॉब्सन' (1886) और 'ओ.ई.डी.' (1993) में वर्णित 'उर्दू' और 'हिन्दुस्तानी' की परिभाषाओं का उद्गम देख सकते हैं।[27] यहाँ हम गिलक्राइस्ट की विश्वासपूर्ण भविष्यवाणी का भी आधार देख सकते हैं।

गिलक्राइस्ट ने 1798 में कहा था :

"अन्ततः यह होगा कि हिन्दू लोग स्वाभाविक रूप से 'हिन्दवी' की ओर झुकेंगे और मुसलमान अनायास ही अरबी और फ़ारसी का समर्थन करेंगे। इस तरह दो शैलियाँ जनम लेंगी।"[28]

यह बात अलग है कि गिलक्राइस्ट की भविष्यवाणी लगभग सत्य सिद्ध हुई। लेकिन इस सिलसिले में हमें यह कदापि न भूलना चाहिए कि यह भविष्यवाणी जिन बुनियादों पर आधारित थी, वे नैतिक और ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से बिलकुल झूठी थीं।

चूँकि गिलक्राइस्ट साहब भी 'हिन्दुस्तानी' को इस भाषा के नाम की हैसियत से क़ायम करने में असफल रहे थे, इसलिए अंग्रेजों ने मजबूर होकर उसे छोड़ दिया और उन्हें एक विकल्प भी मिल गया। 'उर्दू' एक ऐसा नाम था, जिसमें 'हिन्दूपन' की गन्ध दूर-दूर तक न थी। इसके विपरीत चूँकि यह शब्द अपने मूल में तुर्की था, इसलिए इसके मुसलमानी सम्बन्ध स्पष्ट थे।

जैसा कि हम देख चुके हैं, शाहजहाँबाद शहर को लोग उर्दू-ए-मुअल्ला कहने लगे थे और जो भाषा वहाँ बोली जाती थी, उसे 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' कहा जाता था। हम यह भी देख चुके हैं कि ख़ान आरज़ू ने 1750 के आसपास फ़ारसी को 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' बताया है। डॉक्टर सैयद अब्दुल्ला ने ख़ान आरज़ू की एक

और कृति 'दादे-सुख़न' का हवाला दिया है। मैंने यह पुस्तक नहीं देखी है, लेकिन डॉक्टर साहब का कथन है कि इसमें एक स्थान पर ख़ान आरज़ू ने 'शेर-ए-रेख़्ता' की परिभाषा करते हुए लिखा है कि यह वह शाइरी है जो 'ज़बान-ए-हिन्दी-ए-अहले उर्दू-ए-हिन्द' में ज़्यादातर 'बतरीक़' फ़ारसी लिखी जाती है।[29]

इस कथन की रोशनी में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस समय तक हमारी भाषा का नाम 'उर्दू' न था, वरना ख़ान आरज़ू इसे 'हिन्दी-ए-अहले-उर्दू-ए-हिन्द' (अर्थात् शाहजहाँबाद की हिन्दी) क्यों कहते। यह भी ज़ाहिर है कि 'हिन्दी-ए-अहले-उर्दू-ए-हिन्द' कहकर ख़ान आरज़ू इस शाइरी को उत्तर क्षेत्र की भाषा तक सीमित भी कर रहे हैं। साहित्यिक संस्कृति की ओर इशारे के तौर पर, इस बारे में मीर के 'निकातुल-शुअरा' का भी हवाला देखिए जो मैंने ऊपर अंकित किया है। (सन्दर्भ 17)

जनवरी 1772 के ज़माने में, जब 'हिन्दी' को शाहआलम द्वितीय का व्यावहारिक संरक्षण और काव्य-सृजन सम्मान प्राप्त हुआ, तो फ़ारसी के बजाय 'हिन्दी' को ही 'ज़बाने उर्दू-ए-मुअल्ला' कहा जाने लगा। फिर धीरे-धीरे यह नाम घटकर 'ज़बाने उर्दू'/'उर्दू की ज़बान' हुआ, और अन्ततः उर्दू रह गया। यह संक्षिप्त नाम तुरन्त सर्वसाधारण में प्रसिद्ध तो न हुआ, लेकिन यह बात अंग्रेजों के लिए महत्त्वपूर्ण थी कि 'उर्दू' शब्द तुर्की मूल का था, और रेख़्ता/हिन्दी में शब्द 'उर्दू' का अर्थ और चीज़ों के साथ-साथ 'लश्करगाह, लश्करबाज़ार' भी थे। इस प्रकार अंग्रेजों के लिए यह विचार पेश करना आसान था कि हिन्दी/रेख़्ता का जन्म मुस्लिम फ़ौजों की लश्करगाहों और लश्करबाज़ारों का है, और इसीलिए इसका नाम 'ज़बाने उर्दू-ए-मुअल्ला' है।[30]

इस कल्पित धारणा का प्राचीनतम प्रकाशित स्रोत मीर अम्मन का दास्तानी क़िस्सा 'बाग़ो-बहार' मालूम होता है। जैसा कि हम जानते हैं, 'बाग़ो-बहार' एक गद्य-कथा है, जो फोर्ट विलियम कॉलेज में 1801 से 1804 के दौरान लिखी गई। यह पुस्तक गिलक्राइस्ट की देखरेख में लिखी गई और इसे अंग्रेजों को उर्दू पढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जाना था।[31]

मीर अम्मन ने लिखा है कि मैंने यह कहानी 'उर्दू-ए-मुअल्ला की ज़बान' में लिखी है।[32]

वे यह भी लिखते हैं कि मुझसे गिलक्राइस्ट साहब ने फरमाया कि यह क़िस्सा—"ठेठ हिन्दुस्तानी गुफ़्तगू में जो उर्दू के लोग हिन्दू-मुसलमान, मर्द-औरत लड़के-बुज़ुर्ग ख़ास-ओ-आम आपस में बोलते-चालते हैं, तर्जुमा करो।"[33]

बाद के पृष्ठों में मीर अम्मन ने अपने पाठकों को 'उर्दू की ज़बान' की 'वास्तविकता' से परिचित कराने का कर्तव्य यूँ निभाया :

"हज़ार बरस में मुसलमानों का अमल हुआ। सुलतान महमूद ग़ज़नवी आया। फिर ग़ौरी और लोदी बादशाह हुए। इस आमद-ओ-रफ़्त के कारण कुछ ज़बानों ने हिन्दू-मुसलमान की आमेज़िश (मिलावट) पाई। आख़िर अमीर तैमूर ने (जिनके घराने में अब तक नामे-निहाद सल्तनत का चला जाता है) हिन्दुस्तान को लिया। इनके आने

और रहने से शहर का बाज़ार 'उर्दू' कहलाया...जब अकबर बादशाह तख़्त पर बैठे तब चारों तरफ़ के मुल्कों से सब क़ौम क़द्रदानी और फैज़रसानी इस ख़ानदान लासानी की सुनकर हुज़ूर में आकर जमा हुए। लेकिन हर एक की गोयाई (बोलने की शक्ति) और बोली जुदी-जुदी थी। इकट्ठे होने से आपस में लेन-देन, सौदा-सुलफ़, सवाल-जवाब करते। एक ज़बान उर्दू की मुकर्रर हुई।"[34]

उपर्युक्त विवरण झूठ से भरा हुआ है, लेकिन इंसाफ़ की बात यह है कि मीर अम्मन ने जो लिखा वह अंग्रेज़ों के प्रभाव में लिखा और उन्हें प्रसन्न करने के लिए लिखा। उन्हें हरगिज़ यह उम्मीद नहीं थी कि उनकी इस पुस्तक को कभी हिन्दुस्तानी भी पढ़ेंगे। सदीक़ुर्रहमान क़िदवई ने इस बात पर आश्चर्य भी प्रकट किया है कि वह पुस्तक जो वस्तुतः हिन्दुस्तानी न थी, उसकी गणना उर्दू गद्य की अत्यधिक लोकप्रिय कृतियों में की गई।

सदीक़ुर्रहमान क़िदवई ने लिखा है :

"(उर्दू की) जो पुस्तकें फोर्ट विलियम कॉलेज के तत्त्वावधान में तैयार हुईं वो प्रथमतः या वस्तुतः उर्दू के पाठक के लिए न थीं...बाग़ो-बहार के पेरिस और लन्दन संस्करण तो निकले, लेकिन कलकत्ता के सिवा किसी हिन्दुस्तानी शहर से न प्रकाशित हुए...वह साहित्यिक कृति जो हिन्दुस्तानी नहीं थी, इसका अर्थ कि वह हिन्दुस्तानी पाठक के लिए न थी, उर्दू गद्य की सबसे अधिक प्रसिद्ध बहु-पाठ्य क्लासिक बन गई...यह ऐसा अजूबा है जिसके अस्तित्व में आने का कारण उर्दू गद्य के विद्वान अभी तक बयान नहीं कर सके हैं।"[35]

मीर अम्मन का विचार था कि यह किताब अंग्रेजों को उर्दू सिखाने के लिए है। उन्हें क्या मालूम था कि टूटी-फूटी, पराजित, औपनिवेशिक संस्कृति इस कृति को ताबीज बनाकर गले में लटका लेगी, अपने गद्य का इतिहास ही इससे आरम्भ करेगी और यह पुस्तक हर उर्दू बोलनेवाले के घर में महत्त्वपूर्ण कृति का स्थान ग्रहण करेगी। वरना उन्होंने अपनी तरफ़ से उपर्युक्त बयान में कई बातें ऐसी कही थीं और कई महत्त्वपूर्ण बातें इस तरह अनकही छोड़ दी थीं कि पूरी इबारत को पढ़कर कोई भी सतर्क पाठक समझ सकता था कि दाल में कुछ काला है। उदाहरण के तौर पर :

1. मीर अम्मन ने महमूद ग़ज़नवी, ग़ौरी और लोदियों का ज़िक्र यूँ किया है जैसे ये सब एक-दूसरे के बाद क्रमबद्ध थे। वास्तविकता यह है महमूद ग़ज़नवी (मृत्यु 1030) से मुहम्मद ग़ौरी (मृत्यु 1206) तक पौने दो सौ वर्ष है। और फिर ग़ौरी से लेकर पहले लोदी सुल्तान बहलोल लोदी (शासनकाल का आरम्भ 1452) तक ढाई सौ वर्षों का अन्तर है। तैमूर इससे बहुत पहले (1398) यहाँ आकर जा चुका था।
2. मीर अम्मन लिखते हैं कि "अमीर तैमूर के घराने में अब तक नाम निहाद सल्तनत का चला आता है।" मतलब यह हुआ कि तैमूर (1398) से लेकर यह लिखे जाने (1801) तक एक ही घराने का शासन रहा। स्पष्ट है कि यह

बिलकुल ग़लत है। महमूद ग़ज़नवी से लेकर शाहआलम द्वितीय तक कई विशृंखलताएँ हैं। क्रमबद्धता बिलकुल नहीं। लिहाज़ा उर्दू की कहानी को बादशाहों (और मुग़ल सम्राटों) की कहानी से जोड़ने के लिए एक काल्पनिक सिलसिला क़ायम किया जा रहा है।
3. तैमूर और अकबर के बीच भी एक लम्बा अन्तराल है और इससे बढ़कर यह कि अकबर कभी दिल्ली में रहा ही नहीं। दिल्ली और अकबर की निकटता हेमू से युद्ध के दौरान हुई थी (1556), जब अकबर और उसकी सेनाएँ दिल्ली से कोई पचास मील दूर पानीपत में आमने-सामने हुईं।
4. सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि मीर अम्मन यह बताने में कन्नी काट गए कि जिस भाषा में वे 'क़िस्सा-ए-बाग़ो-बहार' लिख रहे हैं, प्राचीन काल से इसका नाम 'हिन्दी/हिन्दवी' है, और उनके अपने काल में उसका सर्वाधिक लोकप्रिय नाम 'हिन्दी' है।

यह सब एक तरफ़ रहा। पाठ्य पुस्तक के रूप में 'बाग़ो-बहार' की असाधारण सफलता का परिणाम यह हुआ कि मीर अम्मन की गाथा को हर मायने में लोकप्रियता और जनसाधारण की स्वीकृति प्राप्त हुई। ग्रियर्सन जैसे गम्भीर भाषाविद् भी धोखे में आ गए कि उर्दू एक मलग़ोबा मिश्रण है विभिन्न जनजातियों और समुदायों की बोलियों का। ग्रियर्सन ने बाद में इस विचार का खंडन किया। उसने लिखा : "यह बात पाठकों की दृष्टि में होगी कि (अर्थात् उसकी पुस्तक में उपयुक्त स्थान पर) हिन्दुस्तानी के आरम्भ का वृत्तान्त जो मैंने वर्णन किया है वह उन कथनों से बहुत भिन्न है जो विभिन्न लेखकों (लेखक स्वयं) ने इस विषय पर इससे पहले लिखे हैं। हमारे पूर्व कथन मीर अम्मन की पुस्तक 'बाग़ो-बहार' की भूमिका पर निर्भर थे। मीर अम्मन के अनुसार उर्दू विविध जनजातियों की अशुद्ध मिश्रित भाषा थी, और ये जनजातियाँ वो थीं जो दिल्ली के बाज़ार में झुंड-के-झुंड इकट्ठी होती थीं।"[36]

ग्रियर्सन ने बात पूरी तरह साफ़ न की थी, क्योंकि मीर अम्मन ने भाषा का नाम 'उर्दू' न लिखा था बल्कि 'उर्दू (अर्थात् देहली) की भाषा' लिखा था। ग्रियर्सन स्वयं इस भाषा को कभी 'हिन्दुस्तानी', कभी 'उर्दू' कहता है। इसलिए ग्रियर्सन भी खुलकर इस बात को स्वीकार नहीं करता कि इस भाषा का सही नाम 'हिन्दी' था और 'हिन्दुस्तानी' या 'उर्दू' वे नाम हैं, जो अंग्रेजों के स्वभाव के अनुकूल थे। दूसरी बात यह कि वह मीर अम्मन पर दोषारोपण करता है, लेकिन यह बताना भूल जाता है कि गिलक्राइस्ट ने भी 'उर्दू' को मिलवाँ भाषा (Mixed language) बताया था।

लेकिन 'हिन्दी' और 'उर्दू' को दो भिन्न भाषाओं के नामों की हैसियत से स्थापित होने में बहुत देर लगी। 'उर्दू' नाम के ख़िलाफ़ इस भाषा के बोलनेवालों के प्रतिरोध का एक कारण यह भी हो सकता है कि इस नाम के द्वारा स्वयं इस भाषा के उद्गम और स्वरूप के विषय में मस्तिष्क में अनायास ही झूठी कल्पनाएँ उत्पन्न होती थीं।[37] अल्लामा सैयद सुलेमान नदवी ने इन्हीं मिथकों का सन्देह उत्पन्न होने के कारण यह

प्रस्ताव रखा था कि 'उर्दू' का नाम 'हिन्दुस्तानी' रख दिया जाए। स्पष्ट है कि हिन्दी उस समय तक एक अलग भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी थी इसलिए अल्लामा के समय में यह नाम उर्दू बोलनेवालों को नहीं मिल सकता था, वरना वह शायद 'हिन्दी' नाम रखने के पक्ष में ही सिफ़ारिश करते।[38]

लखनऊ के एक हकीम और शाइर अहद अली ख़ाँ यकता ने 1798 में या इससे कुछ पहले एक पुस्तक 'दस्तूरुल-फ़साहत' लिखी। उन्होंने 1815 में इसमें कुछ बढ़ोत्तरी भी की।[39] यूँ तो इसका विषय 'उर्दू' व्याकरण है, परन्तु इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण शाइरों के हालात भी हैं, और एक बहुत मूल्यवान प्रस्तावना है। (वे इस भाषा के नाम के लिए 'हिन्दी' और 'उर्दू' दोनों शब्दों का प्रयोग करते हैं।) यह पुस्तक उन्होंने लखनऊ में अंग्रेजों के प्रभाव या दबाव से बहुत दूर लिखी। इसकी प्रस्तावना में उन्होंने 'उर्दू' भाषा के प्रारम्भ पर जो लिखा उसे इस विषय पर किसी मर्मज्ञ उर्दूभाषी का पहला प्रकाशित लेखन कहा जाए, तो ग़लत न होगा। यकता ने लिखा :

"इस भाषा के पैदा होने का कारण यह है कि भारत की महान भूमि दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक उपजाऊ है। जो संसार में चारों ओर अति प्रसिद्ध है और इस देश के अधिकारियों और शासकों का दर्जा हर प्रकार से दूसरे देशों की तुलना में अधिक है। इस ख्याति के कारण दूसरे देशों के विभिन्न कलाओं में पारंगत लोग—लेखक, कवि, अभिजात वर्ग के लोग, संसार में जहाँ-जहाँ थे और जिस तरफ़ थे, भारत आने लगे। और आनेवालों की दिली मुराद भी पूरी होती थी। इसी कारण इनमें से बहुतों ने इस देश को अपना वतन मान लिया और यहीं रह पड़े। इस प्रकार दरबार में उनके आगमन और यहाँ के वासियों से सम्बन्ध बनने पर उन्हें इस ज़बान में गुफ़्तगू करने के अलावा चारा न था।

"यह ज़रूरी हुआ कि इनके सम्बन्ध उनसे और उनके सम्बन्ध इनसे बनने के दौरान, बातचीत में, लोगों ने एक-दूसरे की भाषा के शब्द आवश्यकता भर सीख लिए। और जब यह मामला लम्बे समय तक चला तो एक-दूसरे की भाषा और मुहावरे आदि के आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप यह सूरत पैदा हुई जिसे एक नयी ज़बान कहा जा सकता है। अब न अरबी, अरबी रही और न फ़ारसी, फ़ारसी रही। इसी पर यह अनुमान लगा सकते हैं कि वो तमाम बोलियाँ भी जो हिन्दी भाषाओं में शामिल हैं, अपने मूल रूप में न रहीं, लेकिन उस समय एक व्याकरण जैसा कि होना चाहिए, नहीं बन सका था। और इस भाषा का वह परिष्कृत रूप नहीं उभरा था जो अब है। हर क़ौम अपने मुहावरे को दूसरे के मुहावरे पर तरजीह देती थी।"[40]

आगे चलकर यकता ने लिखा कि अन्ततः बुद्धिमान और ज्ञानी व्यक्तियों ने एक स्तरीय मुहावरा निर्धारित किया। इसकी शर्तों में निम्नलिखित बातें शामिल थीं :

"हर ज़बान व हर मुहावरे से, जैसा कि होना चाहिए, गम्भीर वाक्यों और पसन्दीदा शब्दों को इस प्रकार ग्रहण किया जाना चाहिए कि वे अपनी सरलता के कारण अभिप्राय को व्यक्त कर सकें, और भाषा की क्लिष्टता से दूर हों, बातचीत साफ़ व सारगर्भित

हो, हर शरीफ़ व मामूली आदमी के समझने योग्य हो...लेकिन इन शर्तों को पूरा करनेवाली भाषा शाहजहाँबाद के कुछ वासियों को छोड़कर और किसी के पास नहीं। और ये लोग वो हैं जो इस शहर की फ़सील के अन्दर (अर्थात् जो नगर के चारों ओर चहारदीवारी है) निवास करते हैं। या फिर वे लोग हैं जो उपर्युक्त बुज़ुर्गों के वंशजों में आते हैं। हालाँकि कुछ समय से इन महाशय या इनकी सन्तानों ने शहर छोड़कर और जगहों को अपना निवास-स्थान बना लिया है। चुनाँचे इसी प्रकार इन लखनऊवासियों की भाषा है जो प्राचीन काल से इस नगर (लखनऊ) के वासी नहीं हैं, अतीत में ये वहाँ नहीं थे। इस समय इन लोगों की भाषा, दूसरों के मुक़ाबले में परिष्कृत है।"[41]

यकता का उपर्युक्त कथन उन भाषायी गुणों की परिकल्पना के अनुसार है, जो दिल्लीवालों ने रेख़्ता/हिन्दी शाइरी के दिल्ली में लोकप्रिय होते ही अपने लिए विशिष्ट मान लिए थे।[42] दिल्लीवालों ने राजनीतिक राजधानी का निवासी होने के दम्भ में यह फ़ैसला कर लिया कि उन्हें हिन्दी/रेख़्ता की भाषायी राजधानी होने का भी अधिकार है। चुनाँचे जल्द ही यह बात लगभग तयशुदा मान ली गई कि दिल्ली की साहित्यिक संस्कृति और रेख़्ता की साहित्यिक संस्कृति एक ही है। अंग्रेजों के लिए इसमें कोई समस्या नहीं थी, लेकिन 'उर्दू' के प्रारम्भ के बारे में सिद्धान्तों और मिथकों का मामला कुछ और था।

यकता ने उर्दू/हिन्दी भाषा के आरम्भ एवं विकास के बारे में जो बातें कही हैं, वे उनके समय के पढ़े-लिखे और मातृभाषा की हैसियत से उस भाषा को बोलनेवालों के साझे और लोकप्रिय विचारों पर आधारित रही होंगी। स्पष्ट है कि ये परिकल्पनाएँ और विचार किसी भी सूरत में 'मुसलमान हमलावरों एवं विजेताओं' के बारे में फैले मिथकों के अनुकूल नहीं थे कि यह भाषा तो 'हमलावरों और विजेता,' की भाषा है और इस भाषा को केवल उन हिन्दुओं ने विवश होकर स्वीकार किया था, जो मुसलमानों के यहाँ सेवारत थे। यकता को ऐतिहासिक या तुलनात्मक भाषाविज्ञान का ज्ञान नहीं था (ये विषय उस समय थे भी नहीं), इसलिए उन्हें इस बात की ख़बर न थी कि वह बोली, जिसे बाद के लोगों ने 'खड़ी बोली' का नाम दिया 'हिन्दी/उर्दू' जिसका विकसित रूप है, उत्तर भारत में मुसलमानों के आवागमन के पहले से मौजूद थी। मुसलमानों ने केवल यह किया कि इस बोली को स्थायी भाषा का दर्जा प्राप्त करने में 'रासायनिक एजेंट' का काम किया। लेकिन ये सूक्ष्म बातें तो भाषाविदों की दिलचस्पी की हैं। उर्दू के आरम्भ एवं विकास के बारे में अहद अली ख़ाँ यकता का कथन सामान्य रूप में दुरुस्त है और यह कथन मीर अम्मन की अंग्रेज-पसन्दीदा कहानी से सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर अलग है। दोनों में कोई तालमेल नहीं।

इस बात के सबूत मौजूद हैं कि स्वयं हिन्दुओं ने, जिनकी 'भलाई' के लिए एक पूरी भाषायी परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी में रची जा रही थी, इस नयी संरचना को बहुत ख़ुशी से स्वीकार नहीं किया, बल्कि आरम्भ में तो इसके प्रति बहुत-से हिन्दुओं का रवैया प्रतिकूल ही था। क्रिस्टोफर किंग कहता है कि यू.पी. में 1850 तक भी "पढ़े-लिखे हिन्दुओं का

ऐसा वर्ग न पैदा हुआ था जिसका जुड़ाव खड़ी बोली/हिन्दी की उस सूरत से था, जिसके आधार पर वे स्वयं को उर्दू बोलनेवालों से अलग क़रार दे सकते थे।" किंग का कहना यह भी है कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में "अगर हम संस्कृत की परम्परा में शिक्षा पाए हुए हिन्दुओं के ऐसे कथनों से दो-चार हों, जिनमें खड़ी बोली के इस नए रूप (अर्थात् अंग्रेजों की बनाई हुई आधुनिक हिन्दी) के अस्तित्व से इनकार किया किया गया हो, तो यह कुछ आश्चर्य की बात न होगी।" इसके बाद वह एक घटना का विवरण देता है :

"बनारस कॉलेज के अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष डॉक्टर जे.आर. वैलेंटाइन ने 1847 में यह इरादा किया कि संस्कृत कॉलेज के विद्यार्थियों के उस भाषा के ज्ञान को बेहतर बनाया जाए जिसे वे (डॉक्टर वैलेंटाइन) हिन्दी का नाम देते हैं। (ध्यान रहे कि बनारस कॉलेज का पुराना हिस्सा संस्कृत कॉलेज ही था) उन्होंने हुक्म दिया कि मेरे कुछ विद्यार्थी हिन्दी में अभ्यास करें।

"लेकिन इस आदेश के बारे में लगातार जिस रुचिहीनता एवं प्रतिरोध का सामना वैलेंटाइन को करना पड़ा, उससे तंग आकर उन्होंने विद्यार्थियों को हुक्म दिया कि तुम सब मिलकर एक लेख लिखो, जिसमें यह स्पष्ट करो कि तुम लोग आजीवन जो भाषा रोज़ बोलते हो, उसकी संस्कृति को तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से क्यों देखते हो ? हालाँकि तुम्हारी माँएँ और बहनें इस भाषा के अलावा किसी भी भाषा को समझ नहीं सकतीं।"

अन्ततः इन विद्यार्थियों और डॉक्टर वैलेंटाइन के बीच एक वार्ता हुई, जिसमें यह बात बिलकुल साफ़ हो गई कि किसी भी स्तरीय साहित्यिक भाषा की हैसियत से 'हिन्दी' भाषा का इन विद्यार्थियों को कुछ पता न था। उन्होंने कहा :

"हमारी समझ में यह बात बिलकुल नहीं आती कि आप यूरोपीय लोगों का 'हिन्दी' से क्या आशय है, क्योंकि दरअसल सैकड़ों बोलियाँ ऐसी हैं जिन्हें हमारी समझ के अनुसार हिन्दी कहा जा सकता है और इन बोलियों में संस्कृत जैसी किसी स्तरीय भाषा की कल्पना नहीं है।"

अन्तिम बात यह कि ये विद्यार्थी डॉक्टर वैलेंटाइन की हिन्दी से किसी प्रकार का कोई लगाव महसूस न करते थे, या यूँ कहे कि विद्यार्थी उर्दू = हिन्दू + मुसलमान के समीकरण को स्वीकार करते थे। यह मनोवृत्ति उस समय और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है, जब हम इस बात का एहसास करें कि पाँच दशक बाद इसी कॉलेज के विद्यार्थियों ने 'हिन्दी' और नागरी लिपि को विकसित करने के उद्देश्य से नागरी प्रचारिणी सभा की नींव डाली।[43]

यह बात कि अंग्रेज अन्ततः अपने उद्देश्य में सफल हुए, अब इतिहास का हिस्सा है और यह बात भी इतिहास का हिस्सा है कि अंग्रेजों के उद्देश्य के पीछे औपनिवेशिक हाकिम का दम्भ और राजनीति थी। इसी तरह यह बात भी अब इतिहास है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति ने 'हिन्दी/हिन्दू' अस्मिता की अद्वैतता के बारे में एक विशेष आस्था को जन्म दिया, जिसके कारण आवेशपूर्ण भावनाएँ और गरम योजनाएँ हमारी साहित्यिक और भाषायी संस्कृति में घुस आईं।[44]

सन्दर्भ

वर्तमान काल में इसकी सबसे अधिक विस्तारपूर्वक चर्चा अमृतराय ने अपनी पुस्तक "A House Divided : The origin and Development of Hindi/Hindavi" (नयी दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1984) में की है। अमृत राय के विचार में अन्तर्विरोध है। और इसकी बुनियाद पक्षपाती अटकल और गुमान पर है, न कि ठोस वास्तविकता पर। परन्तु उर्दूवालों ने इसका कोई सन्तोषपूर्ण उत्तर अभी तक नहीं दिया है। इसी बीच इस पुस्तक का दूसरा संस्करण 1991 में प्रकाशित हुआ, जिसमें इसका उपशीर्षक Origin and Development of Hindi/Urdu कर दिया गया है। मेरी जानकारी के मुताबिक़ उर्दूवालों में केवल मिर्ज़ा ख़लील अहमद बेग ने अमृतराय की बात का खंडन किया, लेकिन वह पूरी तरह प्रभावकारी नहीं है। इसका कारण यह है कि अपनी भाषा के आरम्भिक स्रोतों के बारे में स्वयं उर्दूवालों का ज़ेहन साफ़ नहीं हैं। देखें मिर्ज़ा ख़लील अहमद बेग़ का लेख 'अमृत राय और उर्दू हिन्दी का मसला', मिर्ज़ा ख़लील अहमद बेग़ : 'लिसानी तनाज़ुर', नयी दिल्ली, बाहरी पब्लिकेशन्स, 1997।

बहुत कम लोगों को इस बात की जानकारी है कि अमृतराय का सिद्धान्त उनका नहीं, बल्कि उनके पिता प्रेमचन्द के विचारों पर आधारित है। प्रेमचन्द के यहाँ अमृतराय के विचारों की आरम्भिक और नर्म सूरत मिलती है। आर्य भाषा सम्मेलन (लाहौर 1936) के सामने प्रेमचन्द ने जो भाषण दिया, इसमें उन्होंने कहा, "मुसलमानी ज़माने में अवश्य ही हिन्दी के तीन रूप होंगे। एक तो नागरी लिपि में ठेठ हिन्दी, दूसरी उर्दू, यानी फ़ारसी लिपि में लिखी हुई फ़ारसी से मिली हिन्दी, और तीसरी ब्रजभाषा...मुसलमानों की संस्कृति ईरान और अरब की है। उसका ज़ुबान पर असर पड़ने लगा। अरबी और फ़ारसी शब्द इसमें आ-आकर मिलने लगे, यहाँ तक कि आज हिन्दी और उर्दू दो अलग-अलग ज़बानें सी हो गई हैं।" प्रेमचन्द के इस लेख की ओर मेरा ध्यान मानिक टाला के एक लेख के द्वारा आकृष्ट हुआ। यह लेख 'हमारी ज़बान', नयी दिल्ली, 1 जुलाई 1997 में प्रकाशित हुआ था। यहाँ मैंने प्रेमचन्द की अस्ल इबारत उनकी किताब 'कुछ विचार' सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ 74-75 से लिखा है। प्रेमचन्द को शायद आभास न था कि उनकी बातों में द्वन्द्व की कितनी सम्भावनाएँ छिपी हैं। वर्ना उर्दू हिन्दी के मामले में उनका व्यवहार यथोचित और सन्तुलित था। देखें अध्याय 2 के सन्दर्भ 40 और 41।

2. Edward Terry : A Voyage to East India, प्रकाशित लन्दन, 1655 उद्धरण Bernard Cohn, "The Command of language and the language of command" (Ranjit Gupta (Ed.) : Subaltern, IV, Writing on South Asian History and Society, नयी दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994) P. 300
3. मीर, 'कुल्लियात', भाग-1, सम्पादक ज़िल्ल अब्बास, दिल्ली, इल्मी मजलिस, 1968, पृष्ठ 301।
4. इक़बाल ने 'असरार-ख़ुदी' (फ़ारसी काव्य रचना) में भी 'हिन्दी' से 'उर्दू' आशय लिया है। यह पुस्तक पहली बार 1915 में प्रकाशित हुई थी। देखें 'कुल्लियाते इक़बाल फ़ारसी' प्रकाशित शैख़ ग़ुलाम अली एंड संस, लाहौर, 1978, पृष्ठ 11।
5. मुसहफ़ी : 'कुल्लियाते-मुसहफ़ी', भाग-1, सम्पादक नूरुलहसन नक़वी, दिल्ली, मजलिस इशाअते अदब, 1967, पृष्ठ 91।
6. वही, पृष्ठ 38।
7. वही, भाग-2, सम्पादक हफ़ीज़ अब्बासी, दिल्ली, मजलिस इशाअते-अदब, 1969, पृष्ठ 578।
8. अल्लामा हाफ़िज़ महमूद शीरानी, 'मक़ालाते शीरानी', भाग-1, सम्पादक मज़हर महमूद शीरानी, मजलिस तरक़्क़ी अदब, लाहौर, 1966, पृष्ठ 41।

9. नूरूल हसन काकोरवी, 'नूरूल-लुग़ात', भाग-1, नैयर प्रेस, लखनऊ, 1924, पृष्ठ 265।
10. जमील जालिबी ने अपनी 'तारीख़ अदब उर्दू', भाग-1, एजुकेशन पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1977 के पृष्ठ 661 पर मीर मुहम्मद माइल का एक 'क़तअ' नक़ल किया है। इसकी तारीख़ वह 1762 के पहले बताते हैं। इस क़तअ के तीन शेरों में शब्द 'उर्दू' भाषा के तौर पर तीन बार आया है। लेकिन मुझे इस बात में सख़्त सन्देह है कि यह 'क़तअ' वास्तव में मीर मुहम्मदी माइल का है। पहली बात तो यह कि इस बात का अन्दाज़ ख़ासा बोझिल और बनावटी है, गोया यह शेर कहे नहीं बल्कि गढ़े गए हों। दूसरी बात यह कि इनमें शाहजहाँ के बारे में जो बात कही गई है, वह ग़ैर तारीख़ी है। और मीर अम्मन की उन बातों से मिलती-जुलती है, जिनका उल्लेख आगे आएगा। आख़िरी बात यह कि क़तअ में कहा गया है कि 'हिन्दी' भाषा के नाम के रूप में (अर्थात् अठारहवीं सदी के मध्य में) बिलकुल ग़ायब हो चुकी है। ज़ाहिर है कि यह बात सरासर ग़लत है। माइल के शेर हैं :

बोले वह सुनके उर्दू का मैं पूछता था हाल
तुम खोल बैठे पत्तरा इस शहर का भला
मशहूर ख़ल्क उर्दू का था हिन्दवी लक़ब
अगले सफ़ीनों बीच यह लिख गए हैं सब मिला
शाहजहाँ के वक़्त से ख़िल्क़त के बीच में
हिन्दवी तो (नाम) मिट गया उर्दू लक़ब चला

डॉ. जमील जालिबी ने शब्द 'उर्दू' के प्रति, भाषा के नाम के रूप में, रिसर्च के दौरान शायद सावधानी नहीं बरती। वह लिखते हैं कि ख़ान आरज़ू की 'नवादिरुल-अल्फ़ाज़' और तहसीन की नौ तर्ज़ मुरस्सा में शब्द 'उर्दू' भाषा के नाम के रूप में बरता गया है। वास्तविकता यह है कि दोनों ही किताबों में शब्द 'उर्दू' भाषा के नाम के रूप में नहीं; बल्कि 'शहर दिल्ली' के अर्थ में है।
11. मुसहफ़ी, 'कुल्लियात', भाग-3, सम्पादक नूरुलहसन नक़वी, लाहौर, मजलिस तरक़्क़ी अदब, 1971, पृष्ठ 261, और कुल्लियात, भाग-3, सम्पादक हफ़ीज़ अब्बासी, दिल्ली, मजलिस इशाअते अदब, 1975, पृष्ठ 79।
12. Henry Yule and A.C. Burnell : Hobson Jobson, A Glossary of Colloquial Anglo-Indian Words, Phrases, and of Kindred Terms, Etymological, Historical, Geographical, and Discursive. प्रकाशक रूपा एंड कम्पनी, पुनर्मुद्रण संस्करण 1986 (प्रथम प्रकाशन 1886, दूसरा संशोधित संस्करण 1902)
13. इंशा अल्ला ख़ाँ इंशा, और मिर्ज़ा मुहम्मद हसन क़तील, 'दरियाए–लताफ़त' मुर्शिदाबाद, प्रकाशक आफ़ताब आलम ताब, 1856, पृष्ठ 116, चूँकि इस पुस्तक का अधिकांश भाग, ख़ासकर वह जिसका सम्बन्ध भाषा विज्ञान से है, इंशा ने लिखा था, लिहाज़ा लोग आसानी के लिए आमतौर पर पूरे 'दरियाए-लताफ़त' को इंशा की कृति लिखते हैं। इस पुस्तक के भाषा-विज्ञान वाले भाग से हवाला देते समय मैं भी इसी पर अमल करूँगा।
14. शहंशाह शाहआलम सानी : 'अजाइबुल-क़सस', सम्पादक राहत अफ़ज़ा-बुखारी, लाहौर, मजलिस तरक़्क़ी अदब, 1965, पृष्ठ 26
15. सिराजउद्दीन अली ख़ान आरज़ू, 'नवादिरुल अलफ़ाज़', सम्पादक डॉ. सैयद अब्दुल्ला, कराची, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू, पाकिस्तान, 1992 (1951), पृष्ठ 214 (पाठ)। मैंने नवादिर से जितने हवाले दिए हैं उनकी तुलना उस पांडुलिपि से कर ली है जो फोर्ट विलियम कॉलेज की लाइब्रेरी में थी, और अब नेशनल आर्काइब्ज़ नयी दिल्ली में सुरक्षित है।
16. ख़ान आरज़ू : 'मुसमिर', सम्पादन रेहाना ख़ातून, कराची, इंस्टीट्यूट ऑफ सेंट्रल एंड वेस्ट एशियन

स्टडीज़, कराची यूनिवर्सिटी, 1991, पृष्ठ 13 (पाठ), इसके अतिरिक्त देखें, डॉ. सैयद अब्दुल्ला, 'नवादिरुल-अलफ़ाज़' दीबाचा, पृष्ठ 31-32।
17. मीर ने 'निकातुल-शोरा' (1752) में लिखा है कि रेख़्ता का फ़न "फ़ारसी के तर्ज़ में, और उर्दू-ए-मुअल्लाए–शाहजहाँबाद की ज़बान में 'शाइरी का फ़न' " (निकातुल-शोरा, सम्पादक महमूद इलाही, प्रकाशक दिल्ली, इदारए-तसनीफ़, 1972, पृष्ठ 23)। इस कथन के द्वारा हमें उस तनाव की ओर संकेत मिलता है जो उस काल में 'हिन्दी/रेख़्ता' और फ़ारसी की साहित्यिक परिस्थिति की तह में मौजूद था। मीर का आशय यह है कि फ़ारसी के बजाय 'हिन्दी/रेख़्ता' को सर्वप्रथम दिल्ली की साहित्यिक भाषा मानें, लेकिन वह यह भी कहने पर मजबूर है कि रेख़्ता की शाइरी फ़ारसी के तर्ज़ पर ही है। एक तरह देखें तो मीर 'अवामी' अभिप्राय को प्रकट कर रहे हैं। और ख़ान आरज़ू का अभिप्राय 'ज्ञानात्मक' और 'अभिजात' है। यह भी सम्भव है कि मीर के इस कथन की तह में ख़ान आरज़ू और उनके बीच वैमनस्य हो। इसके अतिरिक्त देखें, ख़ान आरज़ू का कथन कि 'रेख़्ता की शाइरी' हिन्दी 'अहल-ए-उर्दू-ए-हिन्द' की शाइरी है, फ़ारसी के तर्ज़ में। (सन्दर्भ 28)
18. John Gilchrist : A Grammar of the Hindoostanee Language, or Part third of Volume first, of a System of Hindoostanee Philology, Calcutta, the Chronicle Press, 1796, P. 261।
19. अमीर ख़ुसरो : 'मसनवी नोह सिपहर' (1317/1318) सम्पादक वहीद मिर्ज़ा, प्रकाशक Oxford University Press, for the Islamic Research Association, Calcutta, 1948 (Persion Side), 1949 (English Side), P. 180।
20. उन्नीसवीं सदी में कैथी के उतार-चढ़ाव के विस्तार के बारे में देखें : Christopher King : One language, Two Scripts, the Hindi Movement in Nineteenth Century India, प्रकाशक बम्बई, ऑक्सफोर्ड प्रेस, 1994। कैथी लिपि को आज शायद ही कोई जानता हो, उन्नीसवीं सदी के अन्त तक, यह लिपि वर्तमान बिहार, यू.पी. और मध्य प्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों में प्रचलित थी। नागरी लिपि को विकसित करने की सरकारी अंग्रेज़ी पॉलिसी ने कैथी का सर्वनाश कर दिया।
21. सैयद सुलेमान नदवी : 'नक़्शे-सुलेमानी', आज़मगढ़, मारिफ़ प्रेस, 1939, पृष्ठ 107, मौलाना सैयद सुलेमान नदवी 'हिन्दुस्तानी' को भाषा के नाम के रूप में 'उर्दू' से बेहतर मानते थे, क्योंकि 'उर्दू' शब्द से कुछ नकारात्मक बोध होता था। इसी पुस्तक के पृष्ठ 103 से 107 देखें।
22. 'हॉब्सन जॉब्सन', पृष्ठ 417, लेखकों ने शब्द, 'हिन्दुस्तानी' के पैदा होने के पश्चिमी साक्ष्य दिए हैं जो 1616 से 1848 के समय तक व्याप्त है।
23. देखें : The Compact Oxford Dictionary, Second Ed. Complete Text, Reproduced Micrographically, Oxford, 1993, P. 769. इस Dictionary में 'हिन्दुस्तानी' के पैदा होने के अंग्रेज़ी साक्ष्य 1616 से 1078 के बीच दिए गए हैं। अन्तिम लाइन का अनुवाद निम्न हैं : "हिन्दुस्तानी या उर्दू कोई इलाक़ाई बोली नहीं है, बल्कि लिंगवा फ्रांका है।"
24. John Gilchrist : The Oriental linguist, An Easy and Familiar Introduction to the Hindoostanee, or Grand Popular language of Hindoostan (Vulgarly But Improperly, Called the Moors); Calcutta, Printed by F. Ferris, at the Post Press, 1802 (1798)।
25. आधुनिक भारत के अंग्रेज़ी प्रेस में यह आवाज़ अब तक सुनाई देती है। उदाहरणार्थ देखें, वसुधा डालमिया की पुस्तक 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' पर वागीश शुक्ल का Review, प्रकाशक The Book Review नयी दिल्ली, अक्टूबर 1997, पृष्ठ 20, डॉ. शुक्ल कहते हैं कि फ़ारसी भाषा में

'हिन्दू' का अर्थ 'nigger' है (अर्थात् केवल हब्शी नहीं, बल्कि अफ्रीकी/हिन्दुस्तानी लोगों के लिए यह अपमानजनक शब्द जिसका अंग्रेजों/अमरीकनों ने सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में आविष्कार किया था) इस पर मेरे उत्तर के लिए देखें, The Book Review, नयी दिल्ली, 1998, अप्रैल, पृष्ठ 37-38।

26. देखें रंजीत गुहा की सम्पादित पुस्तक में बर्नाड कोन का लेख, पृष्ठ 298।

27. मैं "हॉब्सन जॉब्सन" का सन्दर्भ ऊपर दे चुका हूँ, अब देखें एस.डब्ल्यू. फेलुन साहब अपनी डिक्शनरी में शब्द 'उर्दू' का क्या अर्थ लिखते हैं :

An army, a camp; a market. *urdu. i mu'alla*, the royal camp or army (generally means the city of Delhi or Shahjahanabad; and *urdu'i mua'alla ki zaban*, the court language). this term is very commonly applied to the Hindustani language as spoken by the Muslims of India proper.

उपर्युक्त उद्धरण फेलुन की Dictionary (प्रथम संस्करण 1866) के उर्दू एकेडमी, 1987 संस्करण के पृष्ठ 87 से लिया गया है। अब प्लेट्स की Dictionary Oxford University Press, 1974, पृष्ठ 40 का उद्धरण देखें :

Army; Camp; market of the camp; *s.f. (urdu zaban)*. The Hindustani language as spoken by the Mohammadans of India, and by Hindus who have intercourse with them or who hold appointments in the Governement courts & C. (It is composed of Hindi, Arabic, and Persian, Hindi constituting the back bone, so to speak):-*urdu-i-mu'alla*. The royal camp or army (generally means the city of Delhi or Shahjahanabad); the court language *(urdu-i-mu'alla ki zaban)*; the Hindustani language as spoken in Delhi. Compact Edition, 1993, P.2203

जहाँ तक प्रश्न Oxford English Dictionary (O.E.D.) का है, तो उसमें 'उर्दू' और 'हिन्दुस्तानी' को एक ही चीज़ बताया गया है। और आगे चलकर 'हिन्दुस्तानी, जो लिंग्वा फ्रांका है' और उर्दू, 'जो पाकिस्तान की सरकारी ज़बान है' के बीच अन्तर बताया गया है। तार्किक प्रतिकूलता को लापरवाही से दबाकर चपटा कर देने और नज़र से ग़ायब कर देने की कोशिशों की इससे बेहतर मिसालें मिलना मुश्किल होगा।

गिलक्राइस्ट बेचारे को तो फिर भी कभी-कभी कुछ शंका पैदा हो जाती थी, और वह सच्चाई को अपने ढंग से बचाने की कोशिश भी करता था, अतः अपनी A Dictionary, English and Hindoostanee, (Calcutta, 1790 में उसने दावा किया कि संस्कृत का स्रोत 'हिन्दुवी' Hinduwee है), और हिन्दुवी वह भाषा है जो मुसलमानों के आने से पहले सारे हिन्दुस्तान में बोली जाती थी। उसने आगे यह विचार भी प्रकट किया कि मुसलमानों के बार-बार के आक्रमणों के परिणामस्वरूप वह भाषा पैदा हुई, जिसकी 'फ़ौजी' सूरत को मुसलमानों में 'उर्दूवे' (Urduwe) कहा जाता है। इसके 'साहित्यिक' रूप को मुसलमान 'रेख़्ता' (Rekhta) कहते हैं, और हिन्दुओं की, आम बोलचाल वाली, ज़बान की शक्ल में इसे हिन्दी (Hindee) कहा जाता है। (देखें रंजीत गुहा की सम्पादित पुस्तक में बर्नाड कोन का लेख, पृष्ठ 304) गिलक्राइस्ट साहब को यह भी नहीं मालूम कि 'उर्दूवे' कोई शब्द नहीं, एक मिश्रित शब्द का आधा भाग है। हिन्दी भाषा के काल्पनिक वर्गीकरण को देखें :

फ़ौजी ज़बान = उर्दूवे; साहित्यिक भाषा = रेख़्ता; और हिन्दुओं की भाषा = हिन्दी। इसी ज्ञान-प्रचार के सहारे बेचारे गिलक्राइस्ट साहब हिन्दुस्तानियों को उनकी भाषा के भेद सिखाने चले हैं।

28. देखें, गिलक्राइस्ट, 'ग्रामर', पृष्ठ (ii)।
29. 'नवादिरुल-अलफ़ाज़', पृष्ठ 33, इसके अतिरिक्त देखें, सन्दर्भ 16।
30. उपर्युक्त लिखित O.E.D. का उद्धरण देखें, जिसमें 'हिन्दुस्तानी' के बारे में कहा गया है कि वह मुसलमान विजेताओं की भाषा थी।
31. 'बाग़ो-बहार' का पाठ 1801 से 1802 के आसपास तैयार हुआ। इसे 1803 में प्रेस भेजा गया, और यह 1804 में छपी। विस्तार के लिए देखें, 'बाग़ो-बहार', सम्पादक, रसीद हसन ख़ान, नयी दिल्ली, अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू (हिन्द), 1992, पृष्ठ 43-50 और 79-80।
32. 'बाग़ो-बहार', पृष्ठ 6, पाठ 1।
33. वही, पृष्ठ 6, पाठ 1।
34. वही, पृष्ठ 7 और 8, पाठ 1।
35. Sadiq-ur-Rahman Kidwai : Gilchrist and the 'Language of Hindoostan', New Delhi, Rachna Prakashan, 1972, PP. 31-32।
36. Sir George Abraham Grierson : Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part I, Calcutta, Superintendent, Government Printing, India, 1916, P. 44।
37. गिलक्राइस्ट के बहुत बाद भी, ग़ालिब को शब्द 'उर्दू' भाषा के नाम के रूप में प्रयोग करने में संकोच था। उन्होंने शिव नारायण आराम को एक ख़त में लिखा (तिथि, 18 दिसम्बर 1858) कि "मेरा उर्दू दूसरों के उर्दू की अपेक्षा सुभाषी होगा।" ('ग़ालिब के ख़ुतूत', भाग-3, सम्पादक ख़लीक़ अंजुम, ग़ालिब इंस्टीट्यूट, नयी दिल्ली, 1987, पृष्ठ 1068)। ग़ालिब ने उर्दू को पुल्लिंग लिखा है, जबकि भाषा के नाम के रूप में यह स्त्रीलिंग, और लश्कर बाज़ार/लश्करगाह के अर्थ में यह पुल्लिंग है। अर्थात् उस समय तक 'उर्दू' भाषा के नाम के रूप में बहुत स्वीकार्य न हुआ था। मुसहफ़ी का शेर हम ऊपर देख चुके हैं (सन्दर्भ 10) जहाँ शब्द 'उर्दू' पुल्लिंग है, लेकिन भाषा के अर्थ में नहीं आया है। स्पष्ट है कि मुहम्मद हुसैन आज़ाद को ग़ालिब के ऐब निकालने में लुत्फ़ आता था। उन्होंने ('आबे-हयात', प्रकाशित कलकत्ता, उसमानिया बुक डिपो, 1967, (1880), पृष्ठ 613) इस बात पर आपत्ति प्रकट की है कि ग़ालिब ने 'उर्दू' को भाषा के नाम के रूप में पुल्लिग लिखा है। उन्हें यह ध्यान न रहा कि शब्द 'उर्दू' भाषा के नाम के रूप में उन्नीसवीं सदी के मध्य में मान्य न था।
38. अल्लामा सैयद सुलेमान नदवी : 'नुक़ूशे-सुलेमानी' पृष्ठ 101 से 102, यह लेख प्रकाशन से पहले 1937 में लेक्चर के रूप में पेश किया गया था।
39. अहमद अली ख़ान यकता : 'दस्तूरुल-फ़साहत', सम्पादक मौलाना इम्तियाज़ अली ख़ान अर्शी, रामपुर रज़ा लाइब्रेरी, 1943, पृष्ठ 27 (सम्पादकीय भूमिका)।
40. देखें, इसी पुस्तक का अध्याय 7, 'नए ज़माने, नयी साहित्यिक संस्कृति'।
41. यकता, पृष्ठ 5-6 (पाठ)।
42. देखें, इसी पुस्तक का अध्याय 7।
43. क्रिस्टोफर किंग : पृष्ठ 90-91।
44. वसुधा डालमिया ने ग्रियर्सन का कथन दिया है कि "वह अजीबो-ग़रीब, मज़ेदार मिलवाँ (Hybrid) भाषा, जिसे यूरोप के लोग 'हिन्दी' के नाम से जानते हैं।" अस्ल में "स्वयं यूरोपीय लोगों की आविष्कार की हुई है। डालमिया आगे कहती हैं कि "बीती सदी की 1861-1870 वाली दहाई आते-आते 'हिन्दी के जातीय समर्थक' जो "हिन्दी के आरम्भ के बारे में मिथ और वंशावली सृजन करने में लीन थे," इस बात को अत्यन्त निरर्थक बताते कि उनकी भाषा कोई बनावटी चीज़ है। उन्हें इस पर विश्वास था कि "हिन्दी उत्तर भारत के क्षेत्रों में सभी घरों में बोली जाती थी, और

यह स्थिति मुसलमानों के हमले से पहले से थी...जैसा कि अक्सर हुआ है, राष्ट्रवादियों और साम्राजियों में कम-से-कम इस बात पर सहमति थी, अर्थात् हिन्दुओं की अपनी एक भाषा है, और यह भाषा उन्हें आज ही के मुसलमानों से नहीं, बल्कि भूतकालीन मुसलमानों से अलग करती है। दोनों में विभिन्नता थी तो बस इस बात की कि अंग्रेजों का दावा और ज़ोर अपने बारे में था कि हमने यह भाषा पैदा की। यह हमीं थे जिन्होंने इसको मुसलमानी मलबे से निकाला, वह सारा मलबा जो इसके अन्दर और चारों ओर जमा हो गया था। इसके विपरीत, हिन्दुओं को यद्यपि यह बात मान्य थी कि इस (आधुनिक) हिन्दी भाषा में कोई साहित्य न था, लेकिन वे यह भी दावा करते थे कि इस भाषा की क्रमबद्धता प्राचीन काल से थी।" देखें, वसुधा डालमिया की पुस्तक, जिसे हिन्दी प्रेमियों ने प्रशंसा की निगाह से नहीं देखा :

Vasudha Dalmia : The Nationalization of Hindu Traditions : Bharatendu and Nineteeth Century Banaras, New Delhi, Oxford University Press, 1997, PP. 149-150।

इतिहास का नव-निर्माण, साहित्यिक संस्कृति का पुनर्गठन

'हिन्दी/उर्दू' शब्द कब और किस तरह प्रचलित हुए, इनके बारे में किस-किस तरह के मिथक गढ़े गए और इनकी वास्तविक, ऐतिहासिक स्थिति क्या है, इन मुद्दों पर पिछली संक्षिप्त चर्चा ज़रूरी थी। इसका कारण यह है कि आज बहुत से पढ़े-लिखे व्यक्ति इस विचार को मानते हैं कि वह भाषा, जिसे आज हिन्दी कहा जाता है, उपमहाद्वीप के साहित्यिक इतिहास में उस तमाम इलाक़े की हक़दार है, जो (कम-से-कम सत्रहवीं शताब्दी तक) उस भाषा का अधिकार-क्षेत्र था, जिसे आज हम उर्दू कहते हैं और जो उस समय तक हिन्दी/हिन्दवी/दकनी/रेख़्ता कहलाती थी। जहाँ तक ब्रजभाषा, अवधी और इनकी तरह की दूसरी उत्तर भारत की आधुनिक बोलियों का सवाल है, आधुनिक 'हिन्दी' वालों ने देश के बँटवारे के पहले से ही इनके इतिहास को अपने इतिहास का एक हिस्सा क़रार देना शुरू कर दिया था।[1] और जहाँ तक सवाल 'उर्दू' के इतिहास का है, तो हिन्दीवालों के ये दावे कि वह भी हिन्दी के ही इतिहास का हिस्सा है, देश-विभाजन के बाद आरम्भ हुए।[2] आज हिन्दी/उर्दू के इतिहास के बारे में कोई चर्चा इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकती कि एक ही साहित्यिक और भाषायी परम्परा की अमानतदारी के दो दावेदार हमारे परिदृश्य पर हैं। दूसरी बात जो इतनी ही महत्त्वपूर्ण है, यह कि इन दावेदारों के पीछे ज्ञान-पिपासा नहीं, बल्कि राजनीतिक सोच-विचार, मुक़ाबले और 'हिन्दुस्तानी/हिन्दू' अस्मिता के बारे में परिकल्पनाएँ हैं।

जोल ब्लॉक (Jules Block) का कथन है कि 1857 के बाद हिन्दी धीरे-धीरे "हिन्दुओं की लिंग्वाफ़्रांका" (सामान्य भाषा) के रूप में उभरकर सामने आई। ब्लॉक इस बात को भी स्वीकार करता है कि लल्लूलालजी ने गिलक्राइस्ट के प्रभाव के अन्तर्गत अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रेमसागर' लिखकर सब कुछ 'बदल डाला'। ब्लॉक के कथनानुसार, "इसके गद्यवाले हिस्से कुल मिलाकर उर्दू हैं, लेकिन इसमें फ़ारसी शब्दों के स्थान पर हिन्दी आर्याई शब्द रख दिए गए हैं।"[3] ताराचन्द कहते हैं कि हिन्दी के विद्वान भी इस बात को स्वीकार करते हैं। उन्होंने प्रसिद्ध हिन्दी लेखक चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के एक लेख (1921) का एक उद्धरण अपने दावे के प्रमाणस्वरूप पेश किया है।[4] उर्दू के मुक़ाबले में 'हिन्दी' को स्थापित करने के प्रभाव, उर्दू की साहित्यिक संस्कृति के लिए बहुत दूरगामी सिद्ध हुए। लेकिन इनमें कम ही ऐसे हैं जिनको किसी जगह संगठित रूप में बयान या दर्ज किया गया हो, सही परिप्रेक्ष्य में उनका विस्तारपूर्वक